ॐ

सद्गुरु की सीख

प्रस्तुति

आचार्य श्री वसुनंदी जी महाराज

सम्पादक

मुनि प्रज्ञानंद

प्रकाशक

गजेन्द्र ग्रन्थमाला

अन्तर्गत :- एन० एस० इन्टरप्राइजिज

कृति : सदगुरु की सीख

प्रस्तुति : प. पू. आचार्य श्री 108 वसुनन्दी जी महाराज

सम्पादक : मुनि प्रज्ञानंद

पुण्यार्जक : श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, बाडमेर वाले

शुभोपलक्ष्य : आचार्य श्री विद्यानंद मुनिराज के 53 वें
मुनि दीक्षा दिवस के उपलक्ष्य में

प्राप्ति स्थान :
* निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला, बौलखेड़ा
* जैन साहित्य सदन, श्री दि. जैन लाल मन्दिर, दिल्ली
* गजेन्द्र ग्रन्थमाला, H2/16, II फ्लोर, अंसारी रोड,
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002 मो. 9810035356

संस्करण : प्रथम

प्रतियाँ : 1100, सन् 2015

मूल्य : 100.00 रुपये

ISBN No. 978-81-931686-7-7

मुद्रक : एन.एस. एन्टरप्राईजिज
2578, गली पीपल वाली,
धर्मपुरा, दिल्ली-6
दूरभाष : 9811725356, 9810035356

आद्य वक्तव्य

हिन्दी साहित्य में विविध विधाएँ हैं-कहानी, एकांकी, उपन्यास, कविता, संस्मरण, निबंध, नाटक आदि। परंतु इनमें कहानियों का स्थान सर्वोपरि रहा है। यदि कहा जाए कि कथा-कहानियाँ साहित्य का प्राण है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। किसी भी बात को समझाने की यह बहुत सरल विद्या है। जिसे केवल युवा या वृद्ध ही नहीं अपितु बच्चे भी शीघ्रता से समझ जाते हैं। विषम परिस्थितियों में भी साहस बनाए रखना, प्रतिकूलताओं में भी धैर्य से काम लेना, जीवन में नदी की लहर की भाँति उतार-चढ़ावों में समता बनाए रखना, विरोधियों को भी अपने अनुकूल बना लेना यह सब कहानियों के माध्यम से सहज अवगम हो जाते हैं। ये कोरी कहानियाँ नहीं होतीं अपितु मानव को मानवता और मानवता से देवत्व की ओर बढ़ाने की पथ प्रदर्शिकाएँ होती हैं। ये गूढ़, गंभीर, कठिन, दु:साध्य तत्त्वों को सरलता से अवगम करा देती है।

हमें किस प्रकार जीना चाहिए। सामाजिक क्षेत्र में भी प्रेम, समन्वय व सहयोग की भावना, दया, धर्म, सहानुभूति व परोपकार की भावना, एकता आदि गुणों का संचार इनके माध्यम से हो जाता है। आचार-विचार, सदाचार-शिष्टाचार, रहन-सहन इसी अनुप्रयोग से सिद्ध साध्य होता है। माँ, दादी, नानी आदि बच्चों के कोमल व सरल हृदयों में जाति, कुल, नैतिक संस्कारों को कथा-कहानियों के माध्यम से ही अंकित करती हैं जो वृक्ष की तरह वृद्धिंगत होता हुआ परिवार, समाज, देश की परंपराओं को सुरक्षित रखता है, उसकी संस्कृति और सभ्यता की रक्षा करता है। जीवन के धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने की सरल सुगम शिक्षा कथा-कहानियाँ ही प्रदान करती हैं।

कहानियाँ आबाल वृद्ध सभी को प्रेरणा प्रदान करने वाली होती हैं। संस्कृति व सभ्यता के संरक्षण और संवर्द्धन में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इनके माध्यम से अच्छी बातें शीघ्र हृदयंगम हो जाती हैं। आचार्य श्री वादीभ सिंह सूरी क्षत्र-चूड़ामणि नामक ग्रंथ में कहते भी हैं ''दृष्टांते स्फुटाये मति''।

वर्तमान युग में मानव-मर्यादा व परंपराओं को बंधन समझता है किंतु ध्यान रहे दो तटों की मर्यादा में बहती हुई नदी गन्तव्य तक पहुँच जाती है जबकि मर्यादा को तोड़कर बहने वाली नदी विध्वंसक और संहारक बन जाती है। दो पटरियों पर चलती ट्रेन सुरक्षित यात्रियों को उनके स्थान तक पहुँचा देती है जबकि मर्यादा के बाहर आते ही सर्वनाशक बन जाती है। अनुशासित, मर्यादित व्यक्ति उन्नति के शिखरों पर पहुँच जाता है। सद्संगति का अच्छा प्रभाव व कुसंगति का दुष्प्रभाव कहानियों के माध्यम से सरलता से जाना जाता है। जीवन जीने की कला भी कथा-साहित्य ही प्रदान करता है।

परम पूज्य आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा प्रस्तुत यह कृति ''सद्गुरु की सीख'' जन-जन को आह्लादित व नैतिक संस्कार प्रदान करने वाली होगी। यदि प्रस्तुत पुस्तक के संपादन में कोई त्रुटि रह गई हो तो विज्ञजन हंसवत् गुणग्राही दृष्टि से ही इसका अध्ययन करें। यह कृति आप सभी स्वाध्याय प्रेमियों के अंतरंग को आलोकित करने वाली एवं कल्याणदायक होगी। इस कृति की पांडुलिपि तैयार करने में संघस्थ त्यागीव्रती, मुद्रण व प्रकाशक करने में सहयोगी सभी धर्मस्नेही जनों को पूज्य गुरुदेव का मंगलमय शुभाशीष! गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे। उनकी साधना सदा ही वर्द्धमान अवस्था को प्राप्त हो। शताधिक वर्षों तक स्व संयम व ज्ञान की सुगंधि से जन-जन को सुगंधित करते रहें तथा अपने लक्ष्य मोक्ष को शीघ्र ही प्राप्त करें। इन्हीं शुभ भावनाओं के साथ परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री 108 वसुनन्दी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध, श्रुत, आचार्य भक्ति सहित त्रिकाल नमोस्तु.

जैनम् जयतु शासनम्
श्री शुभमिति आषाढ़ सुदी एकम्
वीर निर्वाण संवत् 2541
श्री जिनशासन तीर्थक्षेत्र
जैन नगर, अजमेर

ॐ ह्रीं नमः
गुरु पद पद्म भ्रमरः
मुनि प्रज्ञानंद
गुरुवार, 16 जुलाई 2015

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ.सं.
१.	अनर्थ की जड़-भ्रम	७
२.	उतावला सो बावला	१७
३.	तीन लाख की तीन बातें	२६
४.	सेवा गुण की खान	३५
५.	गइया मारी राम ने यज्ञ कराऊँ मैं	४२
६.	कर भला तो हो भला	४९
७.	अहंकारी का मुख नीचा	५७
८.	संयुक्त परिवार सुखी परिवार	६४
९.	अतिथि सेवा	७३
१०.	जैसे को तैसा	७९
११.	बहुत गयी थोड़ी रही	८३
१२.	समर्पण ही दर्पण	९१
१३.	गुणवत्ता से ही सौंदर्य	९९
१४.	पद का चयन योग्यता से	१०५
१५.	जो चाहो सो पाओ	१११
१६.	सज्जन की दुर्जनता	११६
१७.	अहिंसा का फल	१२७
१८.	करनी का फल	१३४
१९.	जो सुख चाहो आत्मन्	१४१
२०.	देता छप्पर फाड़ के	१४६
२१.	मुट्ठी भर दान से मिला वरदान	१५२
२२.	कल्याणदायी मंत्र	१५९
२३.	तिमूढा-तिगोड़ा	१६४
२४.	होनहार होके रहे	१७१

गुरु कुम्हार शिश माटी

गुरु को कुंभकार के समान होना चाहिए और शिष्य को मिट्टी की तरह। जिससे कुंभकार रूपी गुरु, शिष्य रूपी मिट्टी का कुछ बना सके। मिट्टी मिटती है तभी तो नया आकार पा सकती है, शिष्य पिटता है तभी तो परमात्मा बन सकता है, कुंभकार मिट्टी को जल सिंचन कर गलाता है फिर आकार देता है, बाद में अन्दर हाथ का सहारा देकर ऊपर से पीटता है, तब घड़ा सुन्दर आकृति में उत्पन्न होता है। इसी प्रकार गुरु भी शिष्य के अन्दर वात्सल्य रूपी हाथ का सहारा दिये रहते हैं, ऊपर से डाँट-फटकार भी निरन्तर चलती है तभी तो शिष्य का विकास होता है, गुरु केवल वात्सल्य ही वात्सल्य देते जाऐं तो शिष्य का बिगाड़ हो जायेगा यहाँ तक कि शिष्य अपने संयम से भी हाथ धो बैठेगा और सुनो, यदि शिष्य पर अधिक कड़क अनुशासन लागू कर दिया जाए, वात्सल्य नहीं दिया तो नया शिष्य वहाँ टिक नहीं सकेगा, न संघ में और ना ही संयम के मार्ग पर।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज

मीठे प्रवचन से

१

अनर्थ की जड़-भ्रम

भारत वर्ष में अवन्ति देश का नाम भी सुदीर्घ काल से सुनते आये हैं, अवन्तिदेश का नाम जैन शास्त्रों में, इतिहास में और महापुरुषों के साथ जुड़ा हुआ है, चाहे श्रीपाल चरित्र हो, चाहे चन्द्रगुप्त का कथानक हो, चाहे अन्य भी कोई कथायें हों, प्राय:कर अवन्ति देश से संबंधित रही हैं।

जिस समय का ये कथानक है, उस समय अवन्ति देश में उज्जैनी नाम की नगरी थी जो कि अवन्ति देश की राजधानी थी। वहाँ पर महाराज मणिप्रभ राज्य करते थे। राजा मणिप्रभ, महाराज विश्वम्भर प्रभ और रानी शशिप्रभा के पुत्र थे। विश्वम्भर प्रभ राजा बहुत न्यायप्रिय, प्रजावत्सल और पराक्रमी थे। मणिप्रभ वास्तव में ही मणि के समान थे। महाराज विश्वम्भर ने अपने पुत्र मणिप्रभ का सुयोग्य कन्या के साथ विवाह किया जिसका नाम था मणिप्रभा। मणिप्रभ और मणिप्रभा दोनों के एक पुत्र और एक पुत्री हुयी। पुत्र का नाम था विद्युत्प्रभ और पुत्री का नाम था चन्द्रप्रभा। विद्युत्प्रभ बड़ा धार्मिक, प्रजावत्सल और परोपकारी था, राज्यकाज के प्रति वह अनासक्त था, उदासीन था, उसे नगर में घूमने में, गरीबों की सहायता करने में बहुत आनंद आता था।

उसका एक मित्र था, जो उसी नगर में रहता था, जिसका नाम कुमुद प्रभ था। वह कुमुदप्रभ उस नगर के ईश्वर प्रसाद और धनेश्वरी का पुत्र था। ईश्वर प्रसाद उस नगर का सुप्रसिद्ध पान बेचने वाला था, वह पान सिर्फ अपनी आजीविका चलाने के लिये बेचता था, उसका प्रयोजन बहुत धन एकत्र करना नहीं था, उसकी दुकान चतुष्पद पर थी प्राय:कर के वहाँ से निकलने वाले सभी लोग ताम्बूल का सेवन करते थे, वह सम्मान से पान बेचता था, उसके अधीनस्त और भी लोग

कार्य करते थे। यह ईश्वर प्रसाद राजा के प्रति भी बड़ा श्रद्धा का भाव रखता था, संतोषी था और अपने नैतिक कर्त्तव्यों का बड़ी निष्ठा के साथ पालन करता था। ईश्वर प्रसाद का पुत्र कुमुदप्रभ राजकुमार की बहुत प्रशंसा सुनता। उधर राजकुमार को भी ईश्वर प्रसाद के परिवार का गुणोत्कीर्तन बहुत सुनने में आया कि बहुत ही धार्मिक और संतोषी परिवार है। आदर्श परिवार है, उसका बेटा कुमुदप्रभ भी बहुत होनहार है, प्रज्ञ सम्पन्न है तो राजकुमार के मन में उससे मिलने की भावना हुयी।

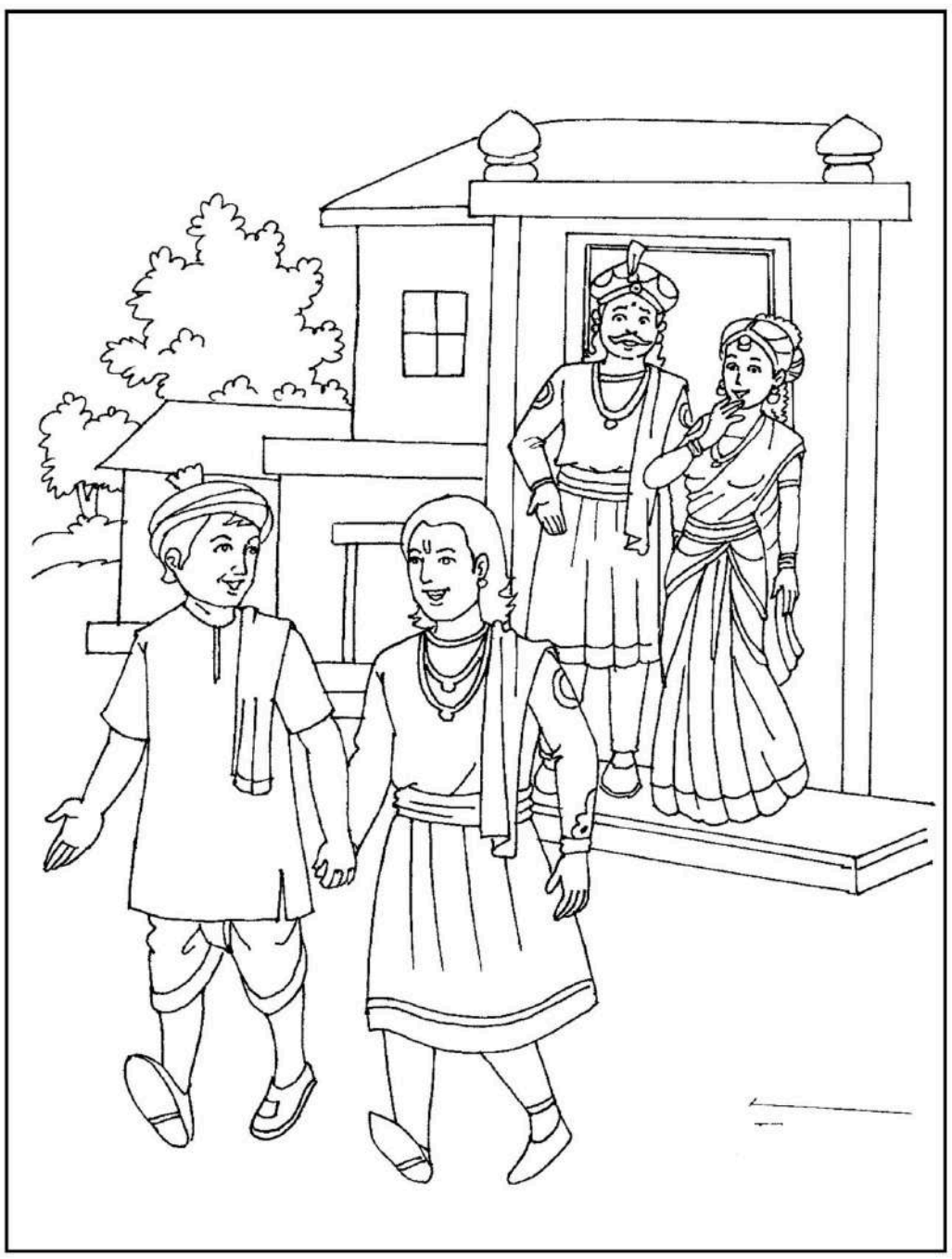

एक दिन संयोग वशात् कुमुदप्रभ उधर से आ रहा था और ये राजकुमार उधर से जा रहा था, दोनों की अनायास भेंट हो गयी एक दूसरे के नाम पूछकर, चेहरा देखकर एक दूसरे के प्रति प्रेम उमड़ा और दोनों में गहरी मित्रता हो गयी। मित्रता इतनी गहरी हो गयी कि कुमुदप्रभ कभी राजमहल में सोता वहीं भोजन पानी करता तो कभी राजकुमार कुमुद प्रभ के साथ ही सोता व भोजन पानी करता। विद्युत्प्रभ और कुमुदप्रभ दोनों अभिन्न मित्र बन गये, राजा मणिप्रभ ने उसको बहुत समझाने का प्रयास किया, किन्तु विद्युत्प्रभ की समझ में नहीं आया, वह राज्यकाज से उदासीन रहकर के संतोषी जीवन जीता। राजा-रानी-मंत्री-सेनापति सभी ने समझाया किन्तु राजकुमार कुमुद प्रभ को छोड़ने के लिये किसी भी कीमत पर राजी नहीं था।

राजा बहुत चिंतित था रानी ने पूछा-महाराज ! आपकी चिन्ता का क्या कारण है ? यदि मुझे बताने में आपकी कोई हानि नहीं होती हो तो मैं आपकी चिन्ता का निराकरण करने में सहायक बन जाऊँ। राजा ने कहा-ठीक कहती हो-हानि तो कुछ भी नहीं, मुझे उम्मीद है कि तुम मुझे उचित समाधान देकर के मेरी चिंता को दूर करोगी। सुनो-राजपुत्र इतना बड़ा हो गया किन्तु वह राजकाज से विमुख रहता है, मैं अपने आत्मकल्याण की सोचता हूँ, सन्यास स्वीकार करूँ किन्तु राजपुत्र राज्य संभालता ही नहीं, वह तो केवल चौबीसों घंटों उस कुमुदप्रभ के साथ ही रहता है। समझाने पर भी वह समझ नहीं पाया, अब मैं क्या उपाय करूँ ? रानी मणिप्रभा ने कहा-आप निश्चिंत होकर विश्राम कीजिये प्रात:काल होने पर मैं आपको उपाय बताती हूँ।

प्रात:काल हुआ और रानी ने राजा को कुछ उपाय बताये उसके अनुसार राजा मणिप्रभ ने कुछ दूतियाँ राजमहल में बुलायीं। पहली दूती जिसका नाम ''लीलावती'' था। वह बोली इस सेविका को आपने याद किया वह आपके चरणों में सेवा करने तत्पर है कहिये-आपकी क्या आज्ञा है? महाराज ने कहा-आप अपनी कला

बताइये कि क्या कर सकती हो? बोली-महाराज आप आज्ञा देकर देखिये मैं चाहूँ तो जल में आग लगा दूँ और इससे बड़ा चमत्कार क्या हो सकता है? महाराज ने कहा ठीक है। पर तुमसे मेरा काम न बनेगा।

दूसरी दूती को बुलाया-पूछा तुम्हारा क्या नाम है वह बोली-महाराज! मुझे ''मन्दाकिनी'' कहते हैं महाराज आपने मुझे याद किया मुझे धन्य-धन्य किया सेविका को आज्ञा दीजिये। महाराज ने कहा-तुम पहले अपनी कला बताओ कि तुम क्या कर सकती हो। वह बोली-महाराज ! आप आज्ञा देकर देखिये आप कहो तो मैं आकाश को फाड़ दूँ। महाराज बोले-तुमसे भी मेरा काम होने वाला नहीं है। पुनः तीसरी दूती को बुलाया जिसका नाम था ''महोद्भुता'। जो महान अद्भुत थी, आश्चर्यकारिणी थी। उसने प्रणाम किया कहा यह सेविका आपके चरणों में उपस्थित है बताइये क्या आज्ञा है? महाराज ने पुनः पूछा-अपनी कला बताइये? वह बोली आप संकेत कीजिये यह दासी आकाश में छेद कर सकती है, तो उसमें थेगड़ा भी लगा सकती है, किसी की अटूट मित्रता को तोड़ सकती है तो पुनः जोड़ भी सकती है, किसी मृतक को जीवित भी कर सकती है तो किसी को मार भी सकती है, रागी को वैरागी भी बना सकती है, तो वैरागी को रागी बना सकती है, आप संकेत करके देखिये आपके मुख से शब्द निकलने की देर है बस काम करने में देर न लगेगी। राजा ने कहा-ठीक है दूती जैसा तुम्हारा नाम है महोद्भुता वैसे ही अद्भुत कार्य तुम्हारे सुनने में लग रहे हैं, किन्तु जब तक साकार न करोगी तब तक विश्वास पात्र न बन सकोगी। बोली महाराज! संकेत कीजिये-राजा बोला बस ! इतना ही संकेत है राजपुत्र राज्य भार संभालने के योग्य हो गया किन्तु फिर भी उसका राज-काज में मन नहीं लगता वह तम्बोलीपुत्र कुमुदप्रभ के साथ पूरे दिन-रात रहता है उसके बिना रहता नहीं तुम्हें उन दोनों की मित्रता तोड़नी है और फिर उसका मन जोड़ना भी है। दूती बोली-महाराज वह तो कहने की आवश्यकता नहीं-राजकुमार

अवश्य ही राज्यभार संभालेंगे आप निश्चिंत रहिये। यह कहकर वह दूती वहाँ से चली गयी।

एक बार राजकुमार और तम्बोलीपुत्र दोनों किसी उद्यान में बैठे हुये बातें कर रहे थे, अपनी मौजमस्ती में संलग्न थे, तभी वह दूती दो बैलों को लेकर रथ के साथ वहीं उनके समीप पहुँची एक बार वह एक बैल को रथ में आगे से लगा रही थी, एक को पीछे से लगा रही थी, इसे देख दोनों ने सोचा-ये कैसी मूर्खा है बैल भी गलत लगा रही है। दूती ने शब्द सुने और कहा-बेटा यदि तुम होशियार हो तो तुम ही आकर बताओ कि कैसे लगाते हैं? तो राजकुमार ने कुमुदप्रभ से कहा-कि तुम चले जाओ किन्तु वह राजकुमार की ओर इशारा करती हुई कहती है कि वह नहीं तुम आओ। राजकुमार चला आया, किन्तु राजकुमार दूर से ही बताकर चला गया कि दोनों बैलों के कंधे पर जुआ रखना है और लौटकर आ गया। दूसरा दिन पुनः हुआ तो वह दूती पुनः आकर के दोनों बैलों की पूंछ पर जुआ रखने लगी। वे दोनों मित्र पुनः हँसने लगे कहने लगे-कल की जो दूती थी वह आधी मूर्ख थी लगता है यह पूरी मूर्ख है जानती ही नहीं कि जुआ कहाँ रखा जाता है। उसने कहा-बच्चों यदि तुम जानते हो तो हमें बताओ कि जुआ कैसे रखा जाता है तो वह राजकुमार तम्बोलीपुत्र से कहता है कि तू जाकर उसे समझा दे तम्बोलीपुत्र गया और जाकर समझाने लगा तम्बोलीपुत्र ने कहा-तुम्हारा रथ तो बहुत सुंदर है तो वह कहती है आपने अभी रथ को देखा ही कहाँ है रथ को यदि अंदर से देखोगे तो आपको लगेगा कि हाँ रथ तो बहुत सुंदर है।

तम्बोली पुत्र अंदर गया, उस दूती ने उसे वहाँ से बाहर नहीं निकलने दिया वे दोनों बहुत देर तक अंदर रहे, जब बाहर निकलकर आया तो वह दूती तम्बोली पुत्र के कान पर अपना मुँह रखकर के ऐसा दिखावा कर रही थी कि जैसे उसके कान में कुछ कह रही है और बार-बार अंगुली से इशारा राजकुमार की ओर कर रही थी। जब

बहुत देर तक तम्बोली पुत्र नहीं आया तब राजपुत्र ने उसे आवाज लगायी-और आने पर देरी का कारण पूछा-''क्या हुआ वह दूती तुमसे क्या कह रही थी, रथ के अंदर बैठे-बेठे बहुत देर तक तुम दोनों क्या कर रहे थे''। उसने कहा-कुछ भी नहीं किया, उसने आने ही नहीं दिया। अच्छा ! तो ये बताओ वह तुम्हाने कान में क्या कह रही थी मेरी ओर इशारा कर रही थी। बोला कुछ नहीं कहा वह तो बस ऐसे ही मूर्ख थी कुछ कहने का बहाना कर रही थी। राजकुमार बोला देख तू मुझसे बात न छिपा मैं तुझसे कोई बात नहीं छिपाता फिर तू मुझसे क्यों छिपाता है? वह बोला भाई मेरा विश्वास कर उसने मुझसे कुछ नहीं कहा।

अगले दिन पुनः वह दूती पहुँची और पुनः दोनों बैलों के सींग पर जुआ रखने लगी। वह दूती तो भेष बदल कर जाती थी वह नहीं पहचान पाता था कि यह वही दूती है या दूसरी। कभी वह दूती अपनी सखियों को आगे कर देती थी, दोनों मित्रों ने कहा-ये भी मूर्ख है-क्या जुआ कभी बैलों के सींगों पर रखा जाता है ? उसने कहा-बेटा यदि तुम जानते हो तो बताओ कि कैसे रखा जाता है-तो तम्बोली पुत्र ने राजपुत्र से कहा-कि तू चला जा और बता दे-उसने कहा मैं नहीं तू ही जा और दूती ने भी इशारे से उस तम्बोली पुत्र को ही बुलाया। वह गया, उस दिन भी उस दूती ने उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया दूती ऐसा ही दिखावा करती रही जैसे कुछ कह रही हो। राजपुत्र ने पुनः पूछा क्या कह रही थी-बोला कुछ नहीं वह तो बस ऐसे ही दिखावा कर रही थी। राजपुत्र ने कहा-नहीं तुम झूठ बोल रहे हो-तुम जरूर कुछ बात छिपाते हो-उस तम्बोली पुत्र ने कहा-ऐसा कुछ नहीं है यह सब आपका भ्रम है, तीसरे दिन पुनः विचित्र भेष में वह दूती आयी और पुनः वह बैल की पीठ, पूँछ, सींग पर जुआ न रखकर के बैल के सामने रस्सी बांधकर के रस्सी पर जुआ रखने लगी। दोनों मित्रों ने देखा व कहा-ये और ज्यादा मूर्ख है, रस्सी पर जुआ थोड़े ही

रखा जाता है। यह सुनकर उसने कहा-तो फिर बेटा! कहाँ रखा जाता है? तम्बोली पुत्र राजकुमार से बताने के लिये कहता है, वो कहती है नहीं तुम ही आओ ! तम्बोली पुत्र पहुँचता है और बताता है कि जुआ कंधे पर रखा जाता है। उस दूती ने फिर वही दिखावा किया राजकुमार की तरफ अंगुली की, इशारा किया, कान पर मुँह रखकर ऐसा दिखाती रही कि जैसे कोई वार्ता कर रही हो, अंदर भी ले गयी।

इसके उपरांत जब वह आया तो पुनः राजपुत्र ने कहा-क्या हुआ उसने क्या कहा-तम्बोलीपुत्र बोला ! कुछ नहीं कहा। अब राजपुत्र का मन तीन दिन से बड़ा उदास था लग रहा था कि तम्बेली पुत्र मुझसे कुछ न कुछ छिपा रहा है, लगता है इसको इस कन्या से प्यार हो गया है, या कोई और ऐसी बात है जो यह मुझसे छिपा रहा है मैंने कभी इससे कोई भी बात नहीं छिपायी। हुआ ये कि वह राजपुत्र उसी समय उस मित्र को वहीं छोड़कर चला गया और तम्बोली पुत्र के प्रति इतना घृणा का भाव भरा कि भोजन-पानी तक छोड़ दिया। कई दिन बीत गए पुत्र की यह दशा देखकर पिता ने पूछा-बेटा क्या बात हो गयी ? तो वह बोला-जब तक वह कुमुद प्रभ मारा न जाये तब तक मैं चैन से नहीं बैठूँगा-उसने सारी बात अपने पिता को बताई। राजा ने चाण्डालों को बुलाया और कहा कुमुदप्रभ को पकड़कर उसे मृत्यु दंड दो। राजपुत्र ने कहा इतना ही नहीं उसकी आँखें जिन आँखों से वह दूती और उसकी प्रीति हुयी है, उन आँखों को निकाल कर लाना मैं उन आँखों को कुचलूँगा और एक पात्र में उसका खून भी लाना। राजा ने चाण्डालों को आदेश दिया और तम्बोली पुत्र को चाण्डाल पकड़ने चले गये। महोद्भुता दूती के संकेतानुसार चाण्डालों ने तम्बोलीपुत्र से कहा-तुम कुछ धन लेकर विदेश चले जाओ राजपुत्र तुम पर कुपित है हम तुम्हें मार नहीं सकते क्योंकि तुम निर्दोष हो, ईमानदार हो, सत्यवादी हो, तुम्हारा परिवार भी प्रतिष्ठित है, किन्तु राजा का आदेश है हम सभी टाल भी नहीं सकते इसलिये तुम यहाँ से अलग हो

जाओ-वह तम्बोली पुत्र वहाँ से दूर चला गया। वे चाण्डाल किसी हिरण को मारकर उसकी आँखें निकालकर उसी के खून से लोटा भर कर लाये और राजकुमार से कहा-ये रक्त उसी कुमुद प्रभ के शरीर का है और ये उसकी आँखें हैं। राजपुत्र विद्युत्प्रभ संतुष्ट हुआ।

इधर राजा ने उसका राज्याभिषेक कर दिया अब वह राजपाट संभालने लगा, किन्तु अभी कुछ ही दिन हुये थे कि उसे अपने मित्र कुमुदप्रभ की याद आने लगी। अब वह रात को सोता नहीं, उसकी शादी भी हो गयी, सब कुछ हो गया किन्तु दिन रात अकेले बैठे रहता। न भोजन करता, न पानी पीता। उसका कारण यह था कि महोद्भुता का कार्य अभी अधूरा ही था। अभी उसने मित्रता तुड़वायी थी। पुनः मित्रता करवाने के लिए महोद्भुता व उसकी सखियाँ वे राजमहल में बार-बार जाकर के दरबार में सच्चे मित्रों के नाटक दिखाया करती थीं, कि मित्र कौन है जो मित्र के लिये अपनी जान दे दे, और ये बताया करती थीं कि मित्रता किस प्रकार से तोड़ी जा सकती है।

एक दिन की बात वह दूतियाँ वही नाटक तीन दूती रथ लेकर आती हैं गलत-गलत जुआ रखती हैं, कान में कुछ कहने का नाटक किया और मित्रता तोड़ने का पूरा क्रम बताती हैं। राजकुमार के मन में आया कहीं ऐसा तो नहीं है कि मेरे साथ भी ऐसा खेल खेला गया हो और मेरी मित्रता तोड़ी गयी हो, उस जैसा मित्र तो मुझे मिल ही नहीं सकता-मैं पापी हूँ, अत्याचारी हूँ, निर्दयी हूँ मैंने अपने मित्र के साथ क्या किया? उसने कई बार मेरी सौगंध खायी, किन्तु मैंने विश्वास नहीं किया। अब तो राजकुमार बहुत ही दुःखी हो गया पुनः भोजन पानी छोड़ दिया, अब तो वह पड़ा है, शरीर भी उसका सूखकर के काँटा हो गया। राजा मणिप्रभ ने पूछा-क्या हुआ बेटे ! वह बोला-पिताजी अब मैं जी न सकूँगा पिता बोले-क्यों? राजकुमार कहता है यदि मेरा मित्र ही नहीं है तो अब मेरे प्राण भी चले जायेंगे

मैं अब उसके बिना नहीं रह सकता, वह मृत्यु को प्राप्त हो गया अब तो वह मुझे मिल नहीं सकता मैं भी न जी सकूँगा। राजा ने चाण्डालों को बुलाया-पूछा-तो उन्होंने कहा-आपके आदेशानुसार हमने तो उसकी मृत्यु कर दी। राजा ने डराया, धमकाया, पैसे का लालच दिया कहा यदि नहीं मारा हो तो ले आओ हम तुम्हें मुँह माँगा धन देंगे यदि वह जीवित है तो। वे बोले-ठीक है महाराज वैसे तो आँखें और खून उसी का निकाल कर लाये है किन्तु फिर भी जाकर देखते हैं शायद वह जीवित हो, श्वाँस चल रही हो।

चाण्डाल गये और उसे पकड़ कर लाये। वह आँख बांधकर आया, शरीर भी सूखकर कांटा सा हो गया, राजकुमार देखता है-अरे तुम्हारी यह स्थिति-बोला हाँ जब शरीर से एक लोटा खून निकल गया तो शरीर तो कमजोर रहेगा ही। और आँखों पर पट्टी ? बोला जब तुमने आँखें ही निकलवा लीं तो अब आँखें कहाँ हैं। भगवान की कृपा से उनकी भक्ति पूजा करता हूँ बस मैं संतुष्ट हूँ, इसमें किसी का दोष नहीं है मेरे ही ऐसे कर्म का उदय आया है मित्र! मुझे तुमसे कोई गिला शिकवा नहीं है। तुम मेरे साथ कुछ नहीं कर सकते मेरे साथ जो कुछ भी किया है वह मेरे कर्म ने किया है इसलिये उस दूती ने मेरे कान में ऐसे शब्द बिना कहे ही ऐसा दिखावा किया, कि जिससे तुम्हें शंका हो गयी और मित्रता टूट गयी। राजकुमार पैर पकड़कर रोने लगता है-कहता है मित्र ! चाहे मैं तुझे अपनी आँख दे दूँगा, एक आँख तुम मेरी ले लेना मैं एक आँख से अपना काम चला लूँगा किन्तु मैं तेरे बिना जी नहीं सकता, तब वह अपनी पट्टी खोलता है, राजकुमार अपने मित्र की स्वस्थ आखें देखकर बहुत प्रसन्न होता है। अपनी गलती की क्षमा याचना करता है, लंबे समय तक वार्तालाप चलता रहा। पूर्व की भाँति दोनों बड़े प्रेम से रहने लगे। राजकुमार राज-पाट संभालने में कुशल तो हो ही गया था अतः राजा मणिप्रभ ने अपनी भावना के अनुसार सन्यास स्वीकार कर लिया। विद्युत्प्रभ

वहाँ का राजा बन गया और कुमुदप्रभ को उसने अपना महामंत्री बना लिया क्योंकि वह बहुत बुद्धिमान था, प्रवीण था। दोनों राज्य का संचालन करने लग गये।

इस प्रकार एक दूती ने एक मिथ्याभ्रम डालकर के दोनों की मित्रता को तोड़ दिया। और बाद में सत्य का बोध हुआ तो पुनः दोनों मित्र हो गये।

शिक्षाः

संसार के अधिकांश प्राणी भ्रांतियों में जीते हैं सत्य के निकट नहीं पहुँच पाते, भ्रान्तियाँ आपसी मित्रता को तोड़ने वाली हैं, प्रेम को, स्नेह को तोड़ने वाली होती हैं, भ्रांतियाँ रिश्तेदारियों को (माँ-बेटी, पिता-पुत्र, भाई-भाई आदि) बिगाड़ने वाली होती हैं, इसलिये भ्रान्तियों से दूर रहना चाहिए सत्य के धरातल पर हम पहुँचे और सत्य को हम जानें। संसार में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जिन्हें आपका और हमारा प्रेम अच्छा नहीं लगता। ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो चाहते हैं हम और आप प्रेम पूर्वक रहें। हमें दुःखी देखने वाले, तोड़ने वाले अपने कार्य में कई बार सफल भी होते हैं किन्तु सत्य का बोध होने पर हमें भ्रान्ति को दूर कर देना चाहिये और अपने प्रेम संबंधों को कभी नहीं बिगड़ने देना चाहिये, यही इस कहानी का तथ्य है।

२

उतावला सो बावला

भारत देश प्राग्वैदिक काल से ही विश्व का गुरु माना जाता रहा है, आज भी उसकी श्रेष्ठता पर कोई संदेह नहीं है। भारत के प्रति विश्व के अन्य देशों के मन में प्रेम, वात्सल्य और सम्मान की भावना शुरू से ही रही है। जिस समय भारत छोटे-छोटे देशों में विभक्त था, जैसे-मागध, अंग, बंग, कलिंग, मालव, सौराष्ट्र, केरल, कर्नाटक, तमिल, चेदि, दशार्ण, कुरुजांगल आदि अन्य-अन्य देश और भी थे। उस समय कुरुजांगल देश का एक प्रसंग है, वही कुरुजांगल देश, वही हस्तिनापुर नगरी जहाँ पर जैन धर्म के प्रवर्तक सोलहवें, सत्रहवें, और अठारहवें तीर्थंकर शांतिनाथ- कुंथुनाथ अरनाथ माने जाते हैं वे चक्रवर्ती भी थे, कामदेव भी थे उन्होंने यहाँ जन्म लिया था, कहा जाता है उनके चार कल्याणक यहाँ हुये थे, इतना ही नहीं जैन लोग यह भी मानते हैं कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव उनका प्रथम पारणा भी वहीं हुआ था। उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लिनाथ का समवशरण भी वहाँ पर आया था। ऐसी भी जैनों की मान्यता है।

उसी हस्तिनापुर नगरी के निकट में एक मानिकपुर नाम का छोटा सा ग्राम था। उस मानिकपुर ग्राम में एक वेदपाठी विद्वान ब्राह्मण निवास करते थे उनका नाम पंडित बुद्धबिहारी लाल था। नि:संदेह वे प्रभु परमात्मा की भक्ति करते, सबके प्रति उपकार की भावना रखते, प्राणी मात्र के प्रति करुणा का भाव उनके मन में भरा हुआ था। उनकी सहधर्मिणी ''शरबती'' उनका नाम तो सरस्वती था, किन्तु उनसे सरस्वती रूठी हुयी थी क्योंकि उन्हें एक भी अक्षर लिखना नहीं आता था, वे वास्तव में सरबती रसवती की तरह से ही थी, मिष्ट बोलने वाली थी, अपने पति के चित्त को हरण करने वाली थी, मानो वह वात्सल्य की निधि थी, प्रत्येक क्रिया में प्रभु स्मरण करना

उनका एक कर्त्तव्य जैसा बन गया था। सरबती को प्रायःकर बुद्धबिहारी

y ky t h ^jl orh* gh d grsFk$ rksd Hkh fp M+ kusd sfy ; sl jLorh Hkh d grsFkA mud k tc ; k\$u d ky py jgk Fkk rc oå k of.k d h Hkkouk l s,d iqk jRu d kst Ue fn; k] ft l d k uke mu nksa kausc M+s ieks Hkko d sl kFk Hkxoku d k iz kn e kud j d sd \$ konkl j[kk] ;g l kp d j d sfd ;g Hkfo"; ea^d \$ ko* v FkkZ ~^u kjk; .k* d k lse d cuA o \$nd ijEijk eau kjk; .k d ks Hkxoku e kuk t krk g\$ ukjk; .k rhu [k.M d sv fèkifr gksrsgå og mud k nkl cud j d s jgsv Fko k Hkkouk earks; gh Fkk fd og Hkxoku d k nkl cuA

d \$ konkl cgq l qn j v k\$ gksa gkj cky d FkkA mUgksa si kjfEHkd f'k{kk e kfud iqj eagh ikIr d h] fd Urqml d h d qkkxz cq f) d ks n\$ kd j d sogk;d sv è; kid ksausmud sfirk cq fcgkjh y ky d s fy ; sl y kg nh fd ; fn bl scukjl eai< +usd sfy ; sHkst k fn; k t k; s rksfu%l ang ; sv iuh cq f) d k l nq; ksx d jd s,d v PN k fo }ku cu ld rk gA ia cq fcgkjh y ky v iusc Ssd ksv iuh v k[kksa l s v ksy ugha d juk p kgrsFksv k\$ ek; l jcrh ustc ; sl qkrc rks og jksa sgh y xh fd Urqia cq fcgkjh y ky usl kp & l e> d j d N cq f) lsd ke fy ; k v k\$ ekuk fd t \$ sv iuh N krh ij iRFkj gh j[k fy ; k gkA v iusbd y k\$s y kM+y sc Ssd ks cukjl d k'kh ea fo | eku mRre uxjh t gk;f'k{kk d k cgq v PN k d sUnzFkk x q d g p y rk Fkk og k;d se q ; v fèk"B krk fo }ku os id k'k feJ v k\$ jke id k'k ikBd bR; kfn t ks fo }ku Fksmud h l af r eaigq d j ;s cky d d \$ konkl fu%l ang id k.M fo }ku cu ld rk g\$ bld s ekè; e lsu d sy v iusifjokj d k uke gksa k v fir qi k.kke k=k Hkh y kHkkfUor gksa kA cgq le; rd l kp & fop kj d jusd smijkUr iaM r cq fcgkjh y ky v k\$ l jcrh usv iusy kM+y sc Ssd \$ konkl d ks mPp f'k{kk ikIr d jusd sfy ; scukjl n\$ k Hkst fn; kA cukjl n\$ k

पहुँचकर के उस युवा केशवदास ने अपने गुरुजनों की बहुत सेवा की, अपने गुरु भाईयों का ध्यान रखते हुये शिक्षा को प्राप्त किया। जो बालक भविष्य में होनहार होना होता है उसके संस्कार बचपन से ही अच्छे दिखाई देते हैं। वह गुरु के द्वारा समझाये जाने पर एक बार में ही शिक्षा को ग्रहण करने में समर्थ होता है। पं. केशवदास एक आदर्श विद्वान बन गये, बारह वर्ष में उन्होंने-व्याकरण, न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, ज्योतिष, वैद्यिक, मंत्र, तंत्र, यंत्र इत्यादि सभी विद्याओं में निपुणता प्राप्त की, और विद्या प्राप्त करके स्वदेश की ओर रवाना हुये। विदाई देते समय गुरुकुल के सभी छात्रों के नेत्र गीले थे, केवल इतना ही नहीं अध्यापकों ने बहुत-बहुत आशीर्वाद देते हुये गीले नेत्रों से अपने योग्य शिष्य को विदाई दी।

जहाँ से भी पंडित केशवदास निकलकर जाते वहीं ग्राम के लोग अपना सौभाग्य मानते, उनका सम्मान करते, पूजा करते। शनैः-शनैः वह अपने नगर में आये और नगर निवासियों ने पं. केशवदास जी का भावभीना स्वागत किया उनकी शोभा यात्रा निकाली। इसे देखकर के पंडित बुद्धबिहारी लाल और सरबती माता बहुत आनंदित और प्रफुल्लित थे। किन्तु इसके बावजूद भी बुद्धबिहारी लाल केशवदास को बार-बार बात-बात पर टोकते थे, यह ठीक नहीं, ऐसा उचित नहीं, पं. केशवदास को ये सब टोका टाकी करना बुरा लगता था कि एक नहीं, दो नहीं, चार छह नहीं कम से कम सौ गाँवों के लोग मेरे भक्त बने हैं, मेरी विद्वता का लोहा मानते हैं किन्तु फिर भी मेरे पिता जी मुझे सबके सामने टोकते रहते हैं, उसे बड़ा खराब लगता था। ये बात कई दिनों तक हुयी किन्तु बुद्धबिहारी लाल ने कभी भी अपने बेटे की प्रशंसा किसी के सामने नहीं की। एक दिन पंडित केशवदास ने सोचा कि पिता जी सदैव मुझे टोकते रहते हैं कभी मेरा सम्मान तो करते नहीं, कभी मेरी प्रशंसा तो करते नहीं, क्यों न एक काम करूँ न रहे बांस और न बजे बांसुरी। रात्रि के समय ही माता-पिता दोनों का काम तमाम करना है।

(20)

गर्मी का समय था माता-पिता दोनों रात्रि में अपने कच्चे मकान की छत पर विश्राम कर रहे थे किन्तु उन्हें नींद नहीं आ रही थी, दोनों जाग रहे थे आपस में चर्चा कर रहे थे। पूर्णिमा का चन्द्रमा आकाश में पूर्ण रूप से खिला हुआ था, उसकी धवल चाँदनी सब ओर फैल रही थी। चन्द्रमा को देखकर के सरबती पूछती है कि देखो ! संसार में चन्द्रमा कितना निर्मल होता है, उज्ज्वल होता है अपनी शीतल चाँदनी से सबको शांति और सुख देने वाला होता है, तभी पंडित बुद्धबिहारी लाल कहते हैं-तू तो बिल्कुल पागल है अरे ! ये चन्द्रमा तो कलंकी है, इसमें तो दाग लगा हुआ है, इससे बड़ा भी एक चन्द्रमा है। वह पूछती है इससे बड़ा चन्द्रमा कौन सा हो सकता है तो पं. बुद्धबिहारी लाल कहते हैं अरी सरबती ! तू जानती नहीं तेरा बेटा तो ऐसा है जिस पर ऐसे हजारों चन्द्रमा न्यौछावर किये जा सकते हैं, उसकी विद्वत्ता तो निस्सीम है, मैं तो उसके सामने कहीं नहीं टिकता। सौ ग्रामों के नहीं हजारों ग्रामों के भक्त आकर उसके चरण छूयेंगे और उसकी सेवा करेंगे ऐसा तेरा बेटा है, तूने तो कुल का नाम रोशन कर दिया तूने तो हमारी सात पीढ़ी को तार दिया।

इस प्रकार से वह अपने पुत्र की प्रशंसा कर रहा था। तभी उसका बेटा रात्रि में सीढ़ियों के पास दरवाजे की ओट में माता-पिता की सारी वार्ता सुन रहा था, तब रसवती कहती है-जब ऐसा ही तुम्हारा लाड़ला बेटा है तब तुम सबके सामने उसे डाँटते क्यों हो? तुमने तो कभी अपने मुख से उसकी प्रशंसा की नहीं। तब पंडित बुद्ध बिहारी लाल कहते हैं-तू नहीं जानती अरे! यदि मैं प्रशंसा करना शुरू कर दूँगा तो उसको अहंकार आने लगेगा, इससे उसकी उन्नति रुक जायेगी, विकास नहीं हो पायेगा। अभी मैं उसे छोटी-छोटी गलती पर डाँटता हूँ तो वो सिर्फ उसके सुधार के लिये गर मैं नहीं डाटूँगा तो फिर और कौन डाँटेगा। और सब तो उसका सम्मान करते हैं यदि मैं ही सम्मान करना प्रारंभ कर दूँगा तो फिर अंकुश न रहेगा। जब शिष्य

पर अंकुश नहीं रहता है तो शिष्य बिगड़ जाता है, शिशु पर अंकुश न हो तो शिशु (बेटा) भी बिगड़ जाता है। अंकुश के कारण ही हाथी भी वश में रहते हैं, निरंकुश कोई भी हो जाये तो वह संहारक हो जाता है इसलिये अंकुश होना जरूरी है।

इस प्रकार वे चर्चा कर रहे थे केशवदास ने ये सब सुना तो उसका मन आत्मग्लानि से भर उठा मेरे माता-पिता मेरे बारे में इतनी अच्छी धारणा रखते हैं मुझे इतना बड़ा मानते हैं कि हजारों चन्द्रमा मुझ पर न्यौछावर कर दिये जायें। मैं ऐसे अपने माता-पिता का घात करने जा रहा था जो देवता तुल्य हैं। धिक्कार है मेरे लिये वह लौटकर के नीचे आता है और पुन: अपने बिस्तर पर जाकर लेट जाता है किन्तु आँखों से नींद कोसों दूर भाग चुकी थी। उसकी नवोढ़ा पत्नी सुशीला-पूछती है आज आपका मन बड़ा आन्दोलित है क्या बात है? किन्तु वह कुछ नहीं कहता है और मौन बैठा रहता है, अपनी जाप आदि करता रहता है।

प्रात:काल हुआ केशवदास ने अपने माता-पिता के चरण स्पर्श किये और कहा-पिता जी आपने तो वेदों का अध्ययन किया है खूब शास्त्र पढ़े हैं यदि कोई व्यक्ति अपने मन में किसी के प्रति झूठा दोष लगा ले और मिथ्या दोष के कारण उसका घात करने के लिये पहुँच जाये उनकी हत्या करने का संकल्प ले ले तो उसका क्या प्रायश्चित है? पंडित बुद्धबिहारी लाल जी कहते हैं बेटा-इसमें दो प्रकार के प्रायश्चित हैं एक तो प्रायश्चित ये है कि किसी ने किसी पर यदि मिथ्या दोष लगा दिया है और हत्या करने का भी संकल्प ले लिया है तो उस व्यक्ति को किसी पीले पीपल के पेड़ के पास जाकर के नीचे उसमें कंडे भरकर आग लगा देना चाहिये और छेद करके अपना मुँह फंसा करके उसके धुयें से घुट-घुट करके अपने प्राण दे देने चाहिये, अथवा दूसरा प्रायश्चित ये है कि बारह साल तक नंगे पैर रहकर विदेश जाकर गौसेवा करे और गंगास्नान करे व साधु संतों की

सेवा सुश्रुषा करे, 12 साल बाद पुनः गृहस्थ जीवन में प्रवेश करे तब तक वह सन्यासी का जीवन जीये। ये दो प्रायश्चित हैं। वह सोचता है मुझे क्या करना चाहिये उसने अपनी पत्नी सुशीला से कहा–तुम एक काम करो यहीं मानिकपुर में एक सेठ जी रहते हैं जिनका नाम जिनदास है। सेठ जी के पास जाकर मेरा पर्चे दे दो और वो जो पैसा दें वह आप ले आना। उस पं. केशवदास ने एक पर्चा सेठ जी के लिये लिखकर के दिया, सेठ जी पर्चा को देखते हैं–उस पर लिखा था ''उकताये काम नशाये, धीरज काम बनाये।''

-(पं. केशवदास)

उस पर्चे को देखकर के जिसमें नीचे लिखा था 1 लाख रुपया दे देना अवसर आने पर मैं तुम्हारा पैसा सूद समेत वापस कर दूँगा, उस जिनदास सेठ ने 1 लाख रुपया सुशीला को दे दिया और पर्चा गिरवी रख लिया। सुशीला घर आ गयी, केशवदास अपने माता-पिता से आज्ञा लेता है और चरण स्पर्श कर कहता है कि मैं 12 साल के लिये बाहर जाता हूँ, तब उसका पिता बुद्धबिहारी लाल समझ पाया कि इसने वह प्रायश्चित किसके लिये पूछा था। एक लाख रुपया घर में रखकर अपनी पत्नी से कहता है कि तुम मेरे माता-पिता की सेवा करना मैं 12 साल के लिये विदेश में रहकर सन्यासी बनकर साधना करूँगा, अपने किये कर्म का प्रायश्चित करूँगा।

इस प्रकार वह चला जाता है और 12 वर्ष तक विदेश में रहता है इधर जो पर्चा जिनदास सेठ के पास था। वह उसने वहीं अलमारी पर चिपका लिया था जहाँ वह बैठता था। कुछ समय पश्चात् जिनदास सेठ भी व्यापार करने के लिये विदेश चला गया उस समय उसका बेटा अर्हद्दास छोटा था, जिनदास की पत्नी विमला वह भी सुगुणी व जिनधर्म का पालन करने वाली थी कुछ सालों बाद जब वह लौटकर आता है तो क्या देखता है कि उसकी पत्नी सो रही है उसके साथ में कोई एक युवा भी सो रहा है उसे देखकर सेठ के मन में शंका हुयी कि मैं तो विदेश गया था धन कमाने के लिये और मेरी पत्नी यहाँ इस प्रकार से मनोरंजन कर रही है व्यभिचारिणी है। उसे देख तीव्र क्रोध में आकर सामने टंगी तलवार को निकाला और उन दोनों सोते युगल को एक साथ मारना चाहा, तलवार का वार करने ही वाला था कि तलवार पीछे अलमारी से टकरायी पीछे मुड़कर देखता है तो वही पर्चा चिपका हुआ था जिस पर लिखा था-''उकताये काम नसाये, धीरज काम बनाये।''

उसने सोचा मुझे उतावलेपन में कोई कार्य नहीं करना धैर्य से काम करना है, तो क्या करना चाहिये? वह तलवार की नोंक से अपनी पत्नी के पैर पर निशान लगाता है जिससे वह जाग जाये, वह जगी और देखा उसका पति सामने खड़ा है वह जल्दी ही अपने पुत्र को जगाती हुयी कहती है पुत्र उठो देखो तुम्हारे पिता श्री आ गये। वह जिस अर्हद्दास को छोटा छोड़कर के गया था वह इतना बड़ा युवा जैसा दिखाई दे रहा था कि वह अपने ही बेटे को नहीं पहचान पाया। माँ-बेटे दोनों सो रहे थे, पुनः वह पश्चाताप करता है अपने पति को देख विमला आनंदित होती है पुत्र भी अपने पिता के चरण स्पर्श करता है और विदेश यात्रा की चर्चा वे आपस में करने लगते हैं। बाद में वह अपनी पत्नी विमला से कहता है कि अब तुम यह पर्चा सुशीला को जाकर दे आओ और कह देना-कि इसका भुगतान पूर्ण हो चुका है मयसूद के। विमला पर्चा दे आती है।

अब जब 12 वर्ष पूर्ण हो गये तो पं. केशवदास भी विदेश से लौट आते हैं और आकर कहते हैं जो 1 लाख रुपया मैंने सेठ जी से उधार लिया था पहले कमाकर सूद समेत वापस न करूँगा तब तक मैं ऐसे ही नंगे पैर रहूँगा। सुशीला कहती है-पैसा तो चुक गया गिरवी रखा पर्चा वापस आ गया, उस पर लिखा था सब भुगतान हो गया है। पं. केशवदास सेठ के पास गये-बोले मैंने भुगतान किया नहीं तो फिर भुगतान कैसे हो गया? क्या तुम मुझे बेईमान सिद्ध करना चाहते हो। जिनदास कहता है नहीं पंडित जी मेरा ऐसा भाव नहीं है किन्तु तुम्हारे इस पर्चे ने इतना चुका दिया है कि मैं कह नहीं सकता, मैंने एक लाख रुपया दिया यदि दस लाख या करोड़ भी होते तब भी वह कम हैं जितना इस कागज ने मेरा उपकार किया। वह अपनी पूरी कहानी सुनाता है और कहता है यदि ये पर्चा नहीं होता तो मैं अपने ही हाथों अपनी पत्नी व बेटे का कत्ल कर देता। ये पढ़ने से ही मुझे सीख मिली इससे ही मेरा परिवार उजड़ने से बच गया। इस प्रकार जिनदास

ने कहा कि मुझे लगता है कि मेरा पैसा वापस आ गया, और आपका उपकार तो जीवन में कभी नहीं भूलूँगा।

पं. केशवदास लौटकर आता है, माता-पिता की सेवा करता है और अपने गृह निवास पर नम्रता के साथ रहता है वह अब माता-पिता के प्रति मन में विशेष सम्मान की भावना रखता है। विनम्रता के साथ उसके ज्ञान का प्रकाश चढ़ता जा रहा है, हजारों ग्राम के लोग उसके भक्त बन रहे हैं, सबके लिये निःस्वार्थ भाव से उपकार हेतु सद् शिक्षा व उपदेश देता है। किसी से कुछ याचना नहीं करता किन्तु फिर भी उसके भक्त लोग बिना कहे ही भेंट देकर जाते हैं जिससे उसकी समृद्धि बढ़ती जा रही है। ज्यों-ज्यों समृद्धि बढ़ती गयी त्यों-त्यों उसके मन में संसार शरीर भोगों से वैराग्य होने लगा। माता पिता जो वृद्ध थे उन्होंने तो सन्यास पूर्वक मरण को प्राप्त हो देवगति को प्राप्त किया। केशवदास के कोई पुत्र नहीं था वह भी अपनी पत्नी सुशीला के साथ एक साधक के भेष में रहकर साधना करके अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं।

शिक्षाः

इसमें कहा-कभी भी माता-पिता अपने बेटे का बुरा नहीं सोचते यदि वे डांटते भी हैं तो भी उनकी अच्छाई और भलाई के लिये।

दूसरी बात ये कि उतावलेपन में हमें कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये, यदि जिनदास उतावले पन में तलवार का वार कर देता तो उसका बहुत बड़ा अहित हो जाता अनर्थ हो जाता।

तीसरी बात–यदि विनम्रता के साथ कोई शिक्षा प्राप्त करते हैं तो निःसंदेह विद्या की प्राप्ति होती है, विद्या फलीभूत भी होती है।

इन सब शिक्षाओं को ग्रहण करते हुये इस कहानी को स्वीकार करें।

३

तीन लाख की तीन बातें

काशी देश पुरावैदिक काल से एक प्रसिद्ध देश रहा है, वही काशी देश जहाँ पर प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती (वही भरत जिसके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा) के पुत्र अर्ककीर्ति ने अकम्पन महाराज की कन्या से अपना विवाह किया। जयकुमार का विवाह सुलोचना के साथ हुआ था, यह वही काशी देश है जिसके बारे में बताया जाता है कि यहाँ कौशाम्बी नाम की नगरी जिस कौशाम्बी नाम की नगरी में छटवें तीर्थंकर पद्मप्रभु स्वामी का जन्म हुआ था, ऐसा जैन इतिहास कहता है, उस काशी देश की राजधानी उस समय भी कौशाम्बी ही थी, राजधानी के निकट एक छोटा सा ग्राम था जिसका नाम था 'पद्मखेट' नगर।

यह पद्मखेट नगर अनेक तालाबों से सुशोभित था, जिसमें सहस्रों कमल खिलते रहते थे, संभव है इसी कारण इस नगर का नाम पद्मखेट पड़ा हो। खेट, कर्बट, मटंब, द्रोण, संवाहन, पत्तन इत्यादि अलग-अलग विशेषताओं से नाम पड़ते थे, तो खेड़े के बराबर जहाँ पद्म खिल रहे थे बसा हुआ यह पद्मखेट नगर इतिहास में भी प्रसिद्धी को प्राप्त रहा है। यहाँ का राजा उस समय पद्मसेन प्रजा-वत्सल, न्यायप्रिय, पराक्रमी एवं कृतज्ञ राजा था, इनकी सहधर्मिणी रानी पद्मावती वह भी पद्मलोचना, पद्मानन एवं पद्म कर व पग से युक्त थी, संभव है जन्म के समय इन शुभ लक्षणों को देखकर ही उनका नाम पद्मावती रखा गया हो। इनके एक कन्या थी जिस कन्या का नाम था-''पद्मलता''। और एक पुत्र था जिस पुत्र का नाम महाराज पद्मसेन ने बड़े लाड़-प्यार के साथ ''पद्मेश'' रखा था। राजकुमार पद्मेश व राजकुमारी पद्मलता अपने माता-पिता की चहेती संतानें थीं। बचपन से ही इन्होंने सुसंस्कार व शिक्षा को प्राप्त किया

एवं स्वयं भी धर्म में रुचि लेते हुये राजनीति में महाराज का सहयोग करते थे। इसी नगर में एक श्रेष्ठी था, जिसका नाम धनपाल था, वह धनपाल भी निष्ठा के साथ अपने कर्तव्य का पालन करता, व्यापार करता और अपने परिवार का पालन पोषण करता। इसकी सहधर्मिणी, चित्त को हरण करने वाली एवं धर्मकार्यों में प्रेरणा देने वाली थी। श्रेष्ठी धनपाल और सेठानी धन श्री इनके एक पुत्र और एक पुत्री ने जन्म लिया पुत्र का नाम गुणपाल और पुत्री का नाम गुण श्री रखा। दोनों माता-पिता से अच्छे संस्कार प्राप्त कर अपनी आयु व्यतीत कर रहे थे।

एक बार धनपाल श्रेष्ठी का पुत्र गुणपाल पिता से आज्ञा लेकर के विदेश व्यापार करने गया, विदेश में उसने अपने मित्रों के साथ व्यापार किया और बहुत सारा धन कमाया। धन कमाकर के बारह वर्ष का समय बीत गया तो वह अपने घर की ओर आने के लिये रवाना हुआ। वह सोचता है मेरे पास इतना सारा धन है, रास्ते में चोर डाकू लूट सकते हैं इसलिये मैं ऐसा करुँ जिससे इस धन का आकार छोटा हो जाये, वह उस धन को रत्न में परिवर्तित कर लेता है, स्वर्ण मुहरों के बदले में उत्कृष्ट रत्न ले लिये उन रत्नों को भी बेचकर और अधिक उच्च कोटि के रत्न लिये और उसने बड़े-बड़े तीन हीरे ले लिये। तीनों हीरे लेकर वह चला आ रहा था, रास्ते में जंगली मार्ग था। संध्या होते-होते किसी नगर तक पहुँचा, रात हो चुकी थी इसलिये रात्रि में भोजन उसने नहीं किया और पानी पीकर रह गया, सोचता है कहाँ ठहरूँ कोई मुझे लूट सकता है मैं तो परदेशी हूँ यहाँ पर।

उसने सोचा जहाँ धर्म का स्थान है वहाँ जाकर ठहरता हूँ वह देखता है किसी स्थान पर भागवत् की कथा चल रही थी वह वहाँ सुनने बैठ गया कीर्तन आदि होने लगा, इस अनुष्ठान की समाप्ति होने पर सभी वहाँ से चले गये केवल एक संत महात्मा रह गये। अब गुणपाल सोचता है मैं क्या करुँ ? महात्मा ने पूछा-बेटा तुम कहाँ से

आये हो? कौन हो? कहाँ जाना चाहते हो अपने घर चले जाओ। गुणपाल ने कहा-महात्मन् ! मेरा घर तो बहुत दूर है आज की रात्रि मैं यहीं व्यतीत करना चाहता हूँ। महात्मा जी ने कहा-नहीं-नहीं यहाँ नहीं। वह बोला-महात्मा जी मेरे पास कुछ जोखिम है इसलिये मैं यहाँ सुरक्षा के साथ रहना चाहता है। संत बोले-ओ हो ! जोखिम के साथ तो तुम यहाँ रह ही नहीं सकते जाओ-जाओ जल्दी जाओ। उसने कहा-महात्मा जी ऐसा न करो मेरे पास इतने बड़े-बड़े तीन हीरे हैं मैं यहीं सुरक्षा मान कर रहना चाहता हूँ। महात्मा जी ने हीरे को देखते हुये मन में लालच का भाव रखते हुये कहा-चलो ठीक है तुम रहना चाहते हो किन्तु ध्यान रखना मैं अपने पास किसी को रोकता नहीं हूँ, मेरी एक शर्त है वह शर्त तुम्हें माननी पड़ेगी। वह बोला महात्मा जी मैं आपकी सभी शर्त मानूँगा किन्तु रात्रि यहीं व्यतीत करूँगा और आपसे निवेदन है कि अपने हीरों की सुरक्षा करता रहूँगा। महात्मा जी ने कहा-मैं भी यही कहना चाहता था तुम्हें यहाँ आकर सोना नहीं है जाग्रत रहकर चौकीदारी करनी होगी। महात्मा जी ने शर्तें रखी कि ऊँची आवाज में बोल नहीं सकते, यहाँ और कोई आ नहीं सकता तुम्हें यहाँ मौन से बैठना पड़ेगा। वह बोला जी महात्मा जी ! और उनकी अन्य शर्तें भी सब स्वीकार कर लीं और वहीं रुक गया। उसने कहा-महात्मा जी अब मुझे कहानी सुनाओ, महात्मा जी ने कहा-कहानी तो मैं सुनाऊँगा किन्तु ध्यान रखना मेरी एक कहानी का मूल्य एक हीरा है, तुम्हें एक हीरा मुझे देना पड़ेगा, उसने कहा-मैं दे दूँगा। कहानी कहना प्रारम्भ किया-

''जब कोई व्यक्ति अपना भला चाहे तो दूसरों को बुरा न कहे।'' दूसरों को बुरा कहने से, करने से व सोचने से अपना भला कभी नहीं होता इसलिये जीवन में ध्यान रखना कि कभी दूसरों का अहित न सोचें। वह बोला ठीक है महात्मा जी। इस प्रकार एक छोटा सा रूपक सुनाकर महात्मा जी ने अपनी बात समाप्त कर दी। कहानी जल्दी पूरी

हो गयी। वह कहता है महात्मा जी रात तो अभी बहुत बड़ी है कहानी पूर्ण हो गयी। महात्मा बोले तो-मैं क्या करुँ? वह कहता है महात्मा जी आपसे विनय है कि आप दूसरी कहानी सुना दो। महात्मा जी बोले एक हीरा। वह व्यक्ति महात्मा को हीरा दे देता है।

उसके पश्चात् दूसरी कहानी सुनायी और उसका सारांश बताया-

''हमें किसी की गलती को उघाड़ना नहीं है'' यदि कहीं प्रत्यक्ष

में गलती हो रही है तो उस पर कपड़ा ढांक दो, उसे ढांककर के चलो, गंदगी उघाड़ने से बदबू आती है और ढांकने से बदबू दब जाती है। तुम्हें किसी की निंदा नहीं करना, बुराई नहीं करना, इस प्रकार संक्षेप में एक उदाहरण देकर समझा दिया। कहानी पूर्ण हो गयी, वह फिर कहता है महात्मा जी अभी रात पूरी नहीं हुयी और कहानी पूरी हो गयी, वे बोले-बताओ अब मैं क्या करुँ? युवक बोला महात्मा जी-एक कहानी और सुना दो, महात्मा जी बोले-किन्तु शर्त वही है कि एक हीरा और मुझे चाहिये।

वह सोचता है महात्मा जी ने मेरे दो हीरे ले लिये कहानी के बहाने से एक हीरा बचा है यदि इसको भी मैं दे दूँ तो मेरे पास कुछ नहीं बचेगा। सोचने लगता है-यदि मैं यहाँ से निकलकर जाता हूँ तो कुछ नहीं कर पाऊँगा, दो हीरे पहले ही मैंने महात्मा जी को दे दिये, तब भी वे हीरे के पीछे पड़े हैं, क्या करुँ मैंने तो बहुत परिश्रम से कमाये हैं कैसे दे दूँ ये तो नहीं दूँगा। किन्तु बाद में सोचता है कि बाहर अंधेरा है यदि कोई लूट ले जायेगा तब भी मेरा हीरा चला जायेगा। यदि भाग्य में नहीं है तो कोई भी लूट सकता है इससे अच्छा तो महात्मा जी को दे दो, वे कुछ न कुछ अच्छे कार्य में ही इसे लगायेंगे। उनकी तीसरी कहानी मेरे कुछ और भी काम में आ सकती है, उसने तीसरा हीरा भी दे दिया, महात्मा जी ने तीसरी कहानी सुनायी और उसका सारांश सुना दिया-

''भोजन की थाली आये तो दूसरों को भोजन कराये बिना कभी भोजन न करना'' पहले दूसरों का ख्याल रखना तो जीवन में तुम कभी भूखे न रहोगे। जी महात्मा जी।

तीसरी कहानी पूर्ण हुयी किन्तु रात फिर भी पूरी नहीं हुयी किन्तु अब उसे कोई चिन्ता नहीं थी वह निश्चिंत होकर सो गया, चोर का कोई डर नहीं महात्मा जी ने तीनों हीरे ले लिये। प्रातः काल होते ही वह उठा और महात्मा जी को प्रणाम कर आज्ञा लेकर चल देता

है अपने नगर की ओर। नगर में पहुँचने के पहले नगर के बाहर एक कुँआ जंगल में ही था, उसमें जंगली जानवर आकर पानी पीते थे, वह भी सीढ़ी उतर कर जाता है नीचे पानी पीने के लिये जैसे ही अंजुली बनाकर पानी भरता है तभी वहाँ पर एक देव एक देवी दिखाई देते हैं उन्हें देखकर के पहले तो वह डर गया बाद में उन्होंने कहा-डरो मत हम तुम्हें मारेंगे नहीं हम दोनों में झगड़ा है, बहस हो रही है तुम हमारा न्याय करो-बोला क्या बहस है? और मैं क्या न्याय कर सकता हूँ। वे बोले-ये बताओ हम दोनों में सुंदर कौन है? उसे महात्मा जी की पहली शिक्षा याद आती है कि किसी को बुरा मत कहो तब वह कहता है सुंदर तो आप दोनों ही हैं, वे कई बार पूछते हैं किन्तु वह एक ही बात कहता-कि मुझे तो दोनों ही बहुत सुंदर लग रहे हैं, वे दोनों चाहते थे किसी एक को सुंदर कहे, और तब हम उसे बहुत बड़ा इनाम देगें। एक कहता है यदि तूने मुझे सुंदर नहीं बताया तो मैं तुझे मार दूँगा, दूसरा भी यही बात कहता है किन्तु वह तो दोनों को ही सुन्दर कहता रहा, किसी को बुरा नहीं कहा-अंत में उन देव-देवी ने संतुष्ट होकर कुछ दिव्य रत्न आदि दिये और सत्कार किया। वह वहाँ से अपने नगर 'पद्मखेट' की ओर आ गया।

संध्याकाल हो चुका था रात्रि के प्रहर में देखता है कि नगर के बाहर जो मुख्य दरवाजा है वहाँ पर कोई है। वह परछाई देखकर आगे गया, देखा कि कोई धीमे-धीमे जा रहा है, उसे लगा सामने से भी कोई आ रहा है और वह थोड़ी देर वहीं ठहर गया, तो वह उस द्वार के पास बने कक्ष में देखता है कि कोई युगल है पास जाकर देखा तो लगा युगल कोई स्त्री-पुरुष हैं, दोनों एक पलंग पर सोये हुये हैं। महात्मा जी की दूसरी बात उसे याद आयी उसने सोचा यह रास्ता है यहाँ और भी कोई आ सकता है इसलिये उसने अपना कंबल लेकर के उनके ऊपर डाल दिया। दोनों नींद में थे, किन्तु जैसे ही वे जगे तो देखते हैं कि हमारे ऊपर किसी अन्जान व्यक्ति ने कंबल डाला हुआ

है वह कौन है आस-पास देखा एक व्यक्ति दिखा जिसके पास उसी तरह का दूसरा कंबल भी था, वह युगल उसके पास गया और पूछा-ये कंबल आपका है उसने कहा-हाँ। यदि आपका है तो हमारे पास कैसे आया-वह बोला क्षमा करो मैंने एक कहानी सुनी थी कि दूसरों की गलती को उघाड़ना नहीं चाहिये, आपका गलत दृश्य देखकर के मैंने अपना कंबल डाल दिया।

वह कहता है ठीक है-इस बात को रहस्य बनाकर ही रखना, ये राजकुमारी है और मैं यहाँ का सेनापति हूँ, इसका मुझसे प्रेम है इसलिये ये मुझसे मिलने आयी थी, किन्तु मैं इसे समझा रहा था, दोनों बैठे थे और नींद आ गयी। मेरे मन में इसके प्रति कोई पाप नहीं है किन्तु इसका मन मेरे ऊपर आसक्त हुआ है तो ये मेरे पास रात्रि में छिपकर के आयी है। इस बात को रहस्य ही बनाये रखना। अन्यथा ठीक नहीं होगा, राजकुमारी डर गयी कहीं भेद खुल गया तो पिताजी मुझे कोई भी दंड दे सकते हैं, इसलिये उचित ये है कि इसको संतुष्ट करना चाहिये, राजकुमारी ने राजमहलों से कोष निकालकर उसे इनाम स्वरूप दिया, आप भले आदमी हैं संसार में ऐसे लोग कम ही होते हैं आप इसे स्वीकार करें। सेनापति ने भी यही कहा-यदि आपको कोई आवश्यकता पड़े तो मैं कोतवाल से कहकर आपकी व्यवस्था करवाऊँगा, आप चिन्ता नहीं करना, आप बड़े भले आदमी हैं, और इस बात को इसी रूप में लेना अन्यथा नहीं लेना। मैं सही कहता हूँ मैं इसे पुत्री तुल्य ही मानता हूँ ये मेरे प्रति स्नेह का भाव रखी थी मैंने इसे समझा दिया है हो सकता है इसकी समझ में आ गया हो।

कुछ दिनों उपरांत गुणपाल राजमहल में किसी समारोह में भोजन करने के लिये गया, महोत्सव में जब गया तो संयोग की बात उस महोत्सव में सेनापति भी भोजन कर रहा था राजकुमारी भी थी, राजा भी था। अब हुआ क्या-उसके मन में जो दो बात थी जो महात्मा ने सुनायी थी वह घटित हो चुकी थी, तीसरी बात उसे याद आयी

महात्मा जी ने कहा था कि भोजन पहले स्वयं न करके दूसरों को खिलाना। उसने सोचा मैं तो स्वयं यहाँ राजा के यहाँ भोजन कर रहा हूँ दूसरे को भोजन कैसे कराऊँ, कोई बात नहीं। जैसे ही भोजन की थाली आयी, सेनापति उसके बगल में ही बैठा था, उसने थाली में जो लड्डू आये थे उन्हें उठाकर चुपचाप सेनापति की थाली में रख दिया, इसे कोई न देख पाया न जान पाया। सेनापति ने ज्यों ही लड्डू खाये सेनापति वहीं मृत्यु को प्राप्त हो गया। वे लड्डू राजकुमारी ने छल करके उसकी थाली में परोसवाये थे कि भविष्य में ये व्यक्ति मेरी बात, भेद न खोल दे, यद्यपि अब मेरे मन में ऐसा कुछ नहीं है और सेनापति के मन में तो पहले ही ऐसा कोई भाव नहीं था किन्तु कभी भी कोई ऐसी बात हो सकती थी जिससे मेरा अपयश हो, इसलिये सुरक्षित भविष्य के लिये न रहे बांस न बजे बांसुरी'' ये व्यक्ति ही न रहे, इस भाव से कि इतने बड़े राजमहल में कौन व्यक्ति आया इतनी बड़ी दावत में क्या कैसे हुआ ये मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा कोई जान भी नहीं पायेगा, इसलिये राजकुमारी ने ही अपनी बुद्धिमानी से ये चालाकी का कार्य किया, किन्तु उन लड्डू से तो सेनापति ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।

राजमहल में हाहाकार मच गया और राज्य की यथारीति से सेनापति के संस्कार किये गये। वह गुणपाल घर लौट आया, राजा ने जब राजकुमारी के संबंध के विषय में नाना राजकुमारों के पास संबंध भेजे, तब वे सब तैयार भी थे, किन्तु राजकुमारी ने सोचा या तो सेनापति के प्रति मेरा अनुराग था, या फिर मैं अब गुणपाल को ही चुनूँगी जिसने मुझे सचेत किया मैंने उसे मारने का प्रयास किया किन्तु उसका पुण्य ज्यादा था, मेरे पुण्य से मेरे अभीष्ट की सिद्धि नहीं हुयी उसके अभीष्ट की ही सिद्धि हुयी इसलिये मैं उस पुण्यात्मा को ही अपना जीवन साथ चुनूँगी। उसने श्रेष्ठी पुत्र गुणपाल से विवाह करने की बात अपनी माँ से कही। रानी ने राजा से कहा–राजा ने कहा

श्रेष्ठी पुत्र को पुत्री देना उचित नहीं है। रानी ने कहा-नहीं वह नगर सेठ है उसके पास बहुत धन है। गुणपाल के पास इतना धन इसलिये था क्योंकि देवों ने दिया था, पुनः राजकुमारी और सेनापति ने भी धन दिया था, उसके पुण्य से जो तीन हीरे उसने अर्जित किये थे उन्हें वापस करने के लिये वह महात्मा भी ढूँढता हुआ गुणपाल के पास आ गया और उसके तीन हीरे वापस दे जाता है। इसके उपरांत गुणपाल का विवाह राजकुमारी पद्मलता के साथ हो गया, राजा पद्मसेन एक महल बनवाकर भेंट में अपने पुत्री पद्मलता व दामाद गुणपाल को देता है। राज्य का कार्यभार अपने पुत्र पद्मेश को सौंपता है इस प्रकार केवल तीन बातों को धारण करके, अपने भाग्य पर विश्वास करके उसने महात्मा की तीन बातें जीवन में चुनी तो उसके माध्यम से तीनों रत्न प्राप्त हुये, राजकुमारी भी मिली, राजा का जमाई हुआ महल मिला और नगर में प्रतिष्ठा प्राप्त हुयी।

शिक्षाः

कहने का आशय है कि महात्मा की बात से उसे इतने अभ्युदय की प्राप्ति हुयी यदि हम भी सच्चे गुरुओं की बात सच्चे मन से स्वीकार करते हैं तब हमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जैसे तीन रत्न प्राप्त होते हैं, मुक्ति रूपी अंगना प्राप्त होती है हमारी प्रतिष्ठा तीन लोक में फैलती है। हमें कभी भी सद्गुरु की सीख की अवहेलना या उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, यही इस कहानी का मर्म है।

४

सेवा गुण की खान

अंग देश भारत वर्ष के पूर्व में एक सुविख्यात देश था, इस अंगदेश से धर्म का संबंध जुड़ा हुआ है, अंगदेश में भारतीय संस्कृति पहले प्रचुर मात्रा में विद्यमान थी, अंगदेश में द्विज शुद्धता के साथ क्रिया काण्ड करने वाले, वैष्णव धर्म का पालन करने वाले थे यह वही अंग देश है जहाँ जैन धर्म के बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य स्वामी ने जन्म लिया था, कहा जाता है इस अंगदेश की चम्पा नगरी में उनके पाँचों कल्याणक हुये। अंगदेश चम्पानगरी सुचिर काल से इतिहास में सुप्रसिद्धि को प्राप्त रही। इस चम्पा नगरी के निकट ही एक सुमेरगढ़ नाम का छोटा सा राज्य था, उसमें एक सामन्त की तरह राज्य करने वाला राजा वज्रसेन था। वह वज्र की तरह कठोर था अन्याय करने वालों के लिये, किन्तु पुष्प की तरह कोमल था धर्मात्माओं की रक्षा करने के लिये। उसका हृदय सदैव करुणा से आप्लावित रहता था। महाराज वज्रसेन की रानी का नाम दयानिधि था।

इसी सुमेरगढ़ में एक नगर श्रेष्ठी था जिसका नाम था धर्मचंद। यह धर्मचन्द्र वास्तव में ही धर्म करने में चन्द्रमा की तरह से था, निष्कलंक था, शीतल, सुखद व संतोषी था। इसकी गृहणी का नाम लक्ष्मीमती था, जो नि:संदेह लक्ष्मी की तरह से ही थी, इसने अपने नाम को सार्थक कर दिया था, जन्मते ही मातृ-पितृ घर में सम्पत्ति की वृद्धि हुयी, इसलिये इसके माता पिता ने इसका नाम लक्ष्मीमति रखा। धर्मचन्द्र के यहाँ आते ही धन की वृद्धि हुयी तो धर्मचन्द्र ने भी इसे वास्तव में लक्ष्मी के रूप में स्वीकार किया। धर्मचन्द्र धर्ममूर्ति ही था, उसके दो पुत्र थे प्रथम पुत्र रविकान्त, द्वितीय पुत्र शशिकान्त दोनों ही एक साथ जन्म को प्राप्त हुये थे, किन्तु फिर भी रविकान्त अन्तर्मुहूर्त प्रमाण (कुछ मिनट) बड़ा था। शशिकान्त छोटा था।

महाराज वज्रसेन संतान विहीन थे किन्तु वे समग्र राज्य को अपनी संतान मानते थे, इसलिये उनके मन में संतान के प्रति कभी दु:ख नहीं हुआ, रानी दयानिधि जो करुणा की, वात्सल्य की मूर्ति थी, छोटे बच्चों को देखकर उसके मन में आता था भगवान ने अभी तक मेरी गोद नहीं भरी किन्तु महाराज वज्रसेन दयानिधि को समझाते थे तुम तो ममता की मूर्ति हो तुम सभी बच्चों में अपने बच्चे को क्यों नहीं देख लेती, ये सभी आपके ही बच्चे हैं। जिनके प्रति अंदर में वात्सल्य का भाव उमड़-उमड़ कर आता है नि:संदेह वे हमारे बच्चे हैं और यदि वात्सल्य का भाव नहीं है तो स्वयं के भी बच्चे हों तो व्यर्थ है। इस प्रकार वह वज्रसेन अपनी प्राण वल्लभा को कई बार समझाता था।

जो सेठ धर्मचन्द्र था यद्यपि उसने अपने बच्चों को धर्म के अच्छे संस्कार दिये फिर भी प्राणी का पूर्व का कर्म भी अपना प्रभाव दिखाता है, उसका प्रभाव भी देखने में आता है। आप देखते भी हैं एक ही कक्षा में पढ़ने वाले कई विद्यार्थी कुछ अच्छे नंबरों से पास होते हैं, कुछ सामान्य होते हैं, कुछ कम नंबर से पास होते हैं और कुछ पास हो ही नहीं पाते, यद्यपि अध्यापक सबको एक जैसी शिक्षा देता है फिर भी सभी अपनी पात्रता के अनुसार ग्रहण करते हैं।

जैसे नदी में पानी बहता जा रहा है वह पानी समान रूप से बह रहा है किन्तु फिर भी कोई व्यक्ति उस नदी में से अपनी कटोरी भरता है, कोई गिलास, कोई बाल्टी, पानी तो समान है फिर भी अपनी-अपनी पात्रता के अनुसार सभी ग्रहण करते हैं। तभी दोनों पुत्र संस्कारों को प्राप्त कर अपने पूर्व कर्मों के अनुसार अपने-अपने कार्य में संलग्न हो गये। जिस व्यक्ति को जिस कार्य में रुचि होती है वह व्यक्ति उसी कार्य को मन से करता है। रविकान्त अपने नेतृत्व में राजनीतिज्ञ कार्य करता, रहीस बनकर रहता धर्म के प्रति उसका मन कम लगता था, बस आमोद-प्रमोद, भोग विलास में ही अपना ज्यादा समय व्यतीत करता था, तो दूसरा भाई शशिकान्त जिसकी पत्नी का नाम सावित्री

था उसके मन में तो दया-करुणा का भाव था, वह सदैव प्राणी मात्र के प्रति दया का भाव रखता था, उसके घर में गाय चराने वाला एक ग्वाला था, जिसका नाम था 'भोला'। वह वास्तव में ही भोला था, गोपालक के नाम से लोग उसे कम जानते थे, भोला नाम से ही ज्यादा जानते थे। बहुत भोला-भाला सीधा-साधा था। शशिकान्त उसी के साथ बैठता और कभी-कभी उसी के साथ गाय चराने चला जाता।

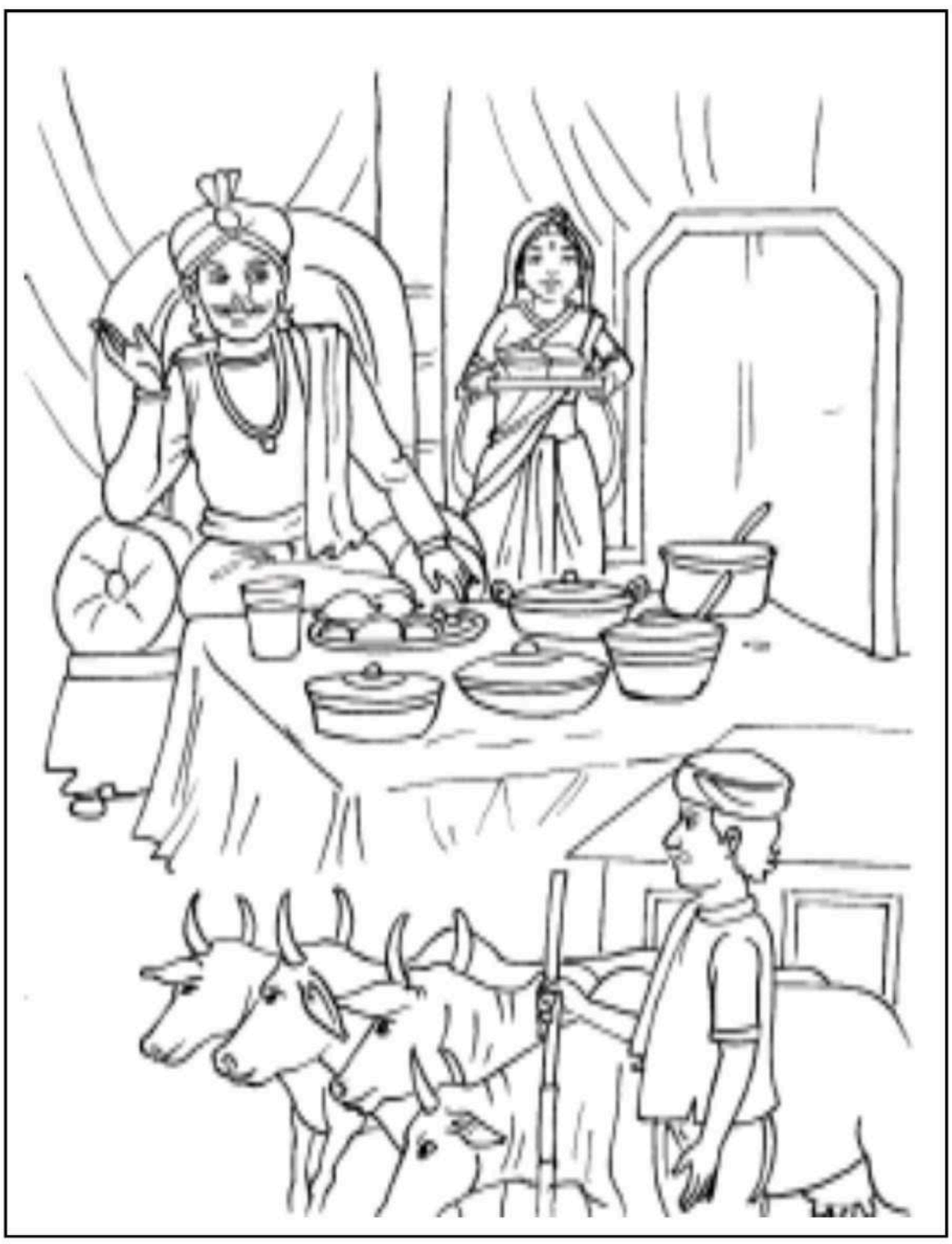

शनैः शनैः शशिकान्त का मन गायों के बीच ही लगने लगा, सैकड़ों गायों को वह चराने चला जाता, वहीं बैठकर मंद-मंद बांसुरी बजाता है, जंगल में रहता है, प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व चला जाता, सूर्य अस्त होने के बाद तक घर में प्रवेश करता है।

रविकान्त की पत्नी गायत्री पति की आज्ञानुसार घर में खूब पकवान बनाती किन्तु शशिकान्त के लिये दलिया, सूखा-भोजन जो पशुओं के लिये बनाया जाता है ऐसा भोजन उसे दिया जाता था। भोला ऐसा भोजन उसके लिये ले जाता था। रविकान्त के मन में शशिकान्त के प्रति बचपन से ही ईर्ष्या थी वह चाहता था मैं राजा बनकर रहूँ किन्तु शशिकान्त को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भोजन में चाहे उसके लिये दलिया आया हो या सूखा चारा, बाजरा आदि कुछ भी वह सब कुछ संतोष से ग्रहण कर लेता, गायों से उसका बड़ा प्रेम हो गया था।

एक दिन एक गाय का मृत्यु काल निकट आ गया मरते समय वह उसे संबोधन देता है-हे भव्य जीव ! तू भी इस पर्याय से मुक्त हो, अपना कल्याण कर, संसार में कोई किसी का नहीं है, वह गाय मृत्यु को प्राप्त कर एक व्यंतरी देवी बन जाती है। वह व्यंतरी देवी गाय का रूप बनाकर अन्य गायों के साथ चरती रहती है और शशिकांत के ही आस-पास घूमती रहती है। भोला जब शशिकांत के लिये भोजन लेकर जाता था, दलिया आदि तो वह भोजन शशिकांत गाय आदि को खिला देता और जो गाय के रूप में देवी थी वह कामधेनु के रूप में बनकर आती और उसे यथेष्ट 56 प्रकार के व्यंजन देती। देवी ने जंगल में ही महल जैसा बना दिया, वह वहीं रहने लगा।

रविकांत को इससे बहुत ईर्ष्या हुयी शशिकांत का सुख, वैभव, समृद्धि उससे देखी नहीं जाती। वह सोचता है कि शशिकान्त को किस प्रकार से रास्ते से अलग कर दिया जाये, और विचार करता है ऐसा कौन सा उपाय है जिससे वह समाप्त हो जाये। किन्तु शशिकान्त

के मन में ऐसा कोई भाव नहीं था, वह तो गाय की सेवा करने में मस्त रहता, भाई के अपने प्रति किये गये व्यवहार की उसने कभी परवाह नहीं की। एक दिन रविकान्त ने शशिकान्त को बुलाया, किन्तु शशिकान्त ने आने से इन्कार कर दिया, कि मुझे पैतृक सम्पत्ति से कोई प्रयोजन नहीं है, तुम अपने में निश्चिंत रहो मैं अपने यहीं पर मस्त हूँ, गायों की सेवा को छोड़ नहीं सकता। रविकान्त ने धोके से एक दूती भेजी, दूती जब रथ लेकर गयी रथ को देखकर शशिकान्त ने कहा-रथ तो बहुत सुंदर है, दूती ने कहा-अभी तुमने देखा ही क्या है, सुन्दरता यदि देखनी है तो रथ के अंदर जाकर देखो, शशिकांत जैसे ही उस रथ में बैठा वह दूती तेज रफ्तार वाले घोड़ों को दौड़ाती हुयी रथ को ले गयी। सभी गायों ने बचाने का प्रयास किया किन्तु रथ के बाहर अस्त्र शस्त्र लगे थे जिससे गायें मृत्यु को प्राप्त हुयी और दूती रथ को लेकर रविकांत के पास पहुँच गयी।

वहाँ उसके पिता धर्मचन्द्र को यह मालूम नहीं था कि उसका बड़ा भाई उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता। उसके पिता ने दोनों पुत्रों को बुलाकर कहा कहा-अब मेरी वृद्ध अवस्था है, मैं सन्यास को स्वीकार करूँगा तुम दोनों प्रेम से रहना। शशिकांत ने कहा पिता जी आपने मुझे जो कुछ दिया है वह ठीक है किन्तु मैं उसे चाहता नहीं, मैं तो गायों की सेवा करना चाहता हूँ। पुनः धर्मचन्द्र ने अपनी सम्पत्ति दोनों को दी, शशिकान्त का मन वहाँ नहीं लगा और वह अपने पितृ गृह को छोड़कर अपनी पत्नी के साथ वहीं जंगल में पहुँचा।

पहुँचकर उसने देखा वहाँ गायों के मृत शव कंकाल पड़े थे। वह उन्हें देख रोने लगा, तभी वहीं गाय जो देवी थी (कामधेनु) अपने रूप में आकर पूछती है आपको क्या कष्ट है, उसने कहा मैं बिना गायों के नहीं रह सकता। मेरा जीवन यही है मैं इनकी ही सेवा करूँगा मुझे इससे बड़ा धर्म कोई नहीं लगता, मुझे इसमें ही शांति संतोष मिलता है, ऐसा लगता है भगवान ने मेरा जीवन गायों की सेवा करने

के लिये ही बनाया है। कामधेनु गाय ने पुनः उसी जंगल में उसके लिये एक महल बना दिया उसकी पत्नी सावित्री और वह दोनों मिलकर गौ सेवा करने लगते हैं। रविकान्त जो खोटे भावों से, ईर्ष्या से पाप कमाता रहा, जब तक माता पिता थे उनके पुण्योदय से कभी जीवन में संकट नहीं आया किन्तु उनके गृहत्याग करते ही, सन्यास लेते ही अब उनकी सम्पत्ति नष्ट होने लगी। शशिकान्त ने अपनी सम्पत्ति पहले ही बड़े भाई को दे दी थी, किन्तु पाप के उदय से वह सम्पत्ति भी नष्ट हो गयी रविकान्त पुनः निर्धन बन गया। शशिकान्त तो यहाँ राजा की तरह रहता है।

यहाँ जो राजा वज्रसेन था उसकी कोई संतान नहीं थी इसलिये उसने मंत्री आदि सबसे कहा-कि मेरी मृत्यु के उपरांत राज्य का अधिकारी उसी प्रकार बनाना जैसी कि राजकीय परम्परा है, पुनः राजा वज्रसेन की मृत्यु हुयी, अब उनका राज्य कौन संभाले उत्तराधिकारी चुनने के लिये हाथी छोड़ा गया, उसकी सूंड़ में माला व जल का कलश रख दिया वह जिसके गले में यह माला डालकर अभिषेक करेगा वही यहाँ का राजा बनेगा। हाथी दौड़ता हुआ जंगल में आया वहाँ गायों के बीच शशिकान्त बैठा हुआ था उस हाथी ने वहीं उसका अभिषेक कर दिया और माला गले में डाल दी, सबने जय-जयकार करते हुये शशिकान्त को ही वहाँ का राजा चुन लिया।

वह 'सुमेरगढ़' का राजा बन गया। उसने अपने बड़े भाई की खोज की, किन्तु वह तो देश से चले गये थे भिक्षावृत्ति कर अपना जीवन यापन करने लगे थे। शशिकान्त अपने राज्य में गौसेवा की घोषणा करता है। वह भी जीवन के अंत तक उनकी सेवा करता रहा, राज्य का संचालन करते-करते अंत में राज्य पुत्र को सौंप कर जंगल में जाकर गायों के साथ ही गौसेवा करते करते ही अपने नश्वर शरीर का त्याग किया। इस प्रकार शशिकान्त गौसेवा करने से अपनी ईमानदारी, सद्भाव, सद्गुण से राज्य वैभव को प्राप्त हुआ बाद में

स्वर्ग को प्राप्त हुआ। रविकान्त अपनी कपट नीतियों से, दुष्टता से दीन-हीन गरीब अवस्था को प्राप्त हुआ।

शिक्षाः

जो व्यक्ति प्राणीमात्र की रक्षा व सेवा करता है, उपकार करता है, जो सद्गुणी होता है, संतोषी, सरल और सहज होता है उसे संसार की सभी निधियाँ स्वतः ही प्राप्त होती है। जो व्यक्ति कुटिल, मायाचारी होता है उसकी सब निधियाँ नष्ट हो जाती है इसलिये हमें हमेशा अच्छाईयों को ग्रहण करना चाहिये, बुराईयों का परित्याग करना चाहिये यही इस कहानी का सार है।

क्या लटकते हुए ही सड़ना है?

जानते हो? वृक्ष पर लगा हुआ फल जब टूटने को होता है तब वह पक जाता है, यूँ तो कभी आँधी के झोंके में कच्चा फल भी कई बार टूट जाता है। वह फल पहले बहुत छोटा होता है बाद में विकसित हो जाता है, पकने पर तो नियम से टूटेगा ही, पकने पर पकड़ कमजोर हो जाती है। इसी प्रकार मनुष्य जब पक जाता है तब तो नियम से टूटेगा ही, पकड़ भी कमजोर होना चाहिए। बहुत कम मनुष्य होते हैं जो पूर्ण पक जायें, किन्तु आश्चर्य इस बात से होता है कि, पूरे बाल पक गये, शरीर पक गया, पक कर सूख गया, टूटने को है फिर भी तुम्हारी गृहस्थी की पकड़, राग-द्वेष-मोह की पकड़ कमजोर नहीं हुई जैसे फल वृक्ष से जुड़ा है वैसे ही आप परिवार से जुड़े हैं, टूटने से पहले पकड़ ढीली कर दो, अन्यथा पेड़ पर लटकते ही सड़ जाओगे, पके हुए टूट गये तो जीवन सार्थक हो जाता है, परमात्मा का रसास्वादन भी कर सकते हैं।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज

मीठे प्रवचन से

५

गइया मारी राम ने यज्ञ कराऊँ मैं

यह प्रसंग उस समय का है जब भारतवर्ष में अष्टम बलभद्र भगवान रामचन्द्र जी का सर्वत्र साम्राज्य दिखाई दे रहा था, वहाँ पर एक ऐसा भी भक्त था जो राम को अपना आराध्य मानता था। राम चाहे भले ही कौशल देश (अयोध्या) में जन्मे किन्तु उनका प्रभाव प्रभु परमात्मा की तरह से पूरे विश्व में व्याप्त था। मालव देश एक सुप्रसिद्ध देश रहा है, यहाँ एक कनकपुर नाम का नगर था, उस समय इस नगर में राजा कनकरथ शासन करते थे, इनकी सह धर्मिणी का नाम कनकमाला था। इनके एक पुत्र था जिसका नाम था कनकध्वज एक पुत्री थी जिसका नाम था कनक श्री।

इसी नगर में एक कृषक था जिसका नाम था छगनलाल। छगनलाल की पत्नी का नाम धनवती और पुत्र का नाम धनदेव था। छगनलाल ईमानदार किसान था, वह परिश्रम करके कृषि सम्पन्न कर अपने परिवार का भरण-पोषण करता था। छगनलाल के खेत से लगा हुआ खेत मगनलाल का था। मगनलाल प्राय:कर अपनी गायों को, बैलों को, मवेशियों को चराने के लिये अपने चारागाह में छोड़ देता था, किन्तु कुछ पशु ऐसे थे जो मगनलाल की निगाह को बचाकर चुपके से छगनलाल के खेत में घुस जाते थे। छगन लाल ने कई बार उन्हें रोकने का प्रयास किया किन्तु रात्रि में कभी-कभी पशु चले ही जाते थे। उस झुंड में एक गाय ऐसी थी जो प्राय:कर रात्रि में छगनलाल के खेत में घुसकर फसल को नष्ट करती थी। छगन लाल नित्यप्रति की इस हानि को सहन नहीं कर पा रहा था। उसने मगनलाल को कई बार उलाहना भी दिया, मगनलाल ने उसे आश्वासन दिया कि आगे से ऐसी गलती नहीं होगी, मैं अपने पशुओं, मवेशियों को बांधकर रखूँगा। किन्तु वह गाय जो छगनलाल के खेत में जाकर उसको उजाड़ती, नुकसान करती वह रात्रि में कभी रस्सा तोड़कर,

कभी खूंटे को उखाड़करके तो कभी रस्सी में से अपनी गर्दन निकालकर के किसी भी प्रकार से चली जाती थी, लगातार यह गाय जाती रही। छगनलाल ने कई बार उसे भगाने का प्रयास किया।

एक दिन तो गाय ने अति ही कर दी, न जाने क्या उस गाय की मृत्यु ही शायद उसके सिर पर मंडरा रही थी, एक ही रात में चार बार वह उसके खेत में गयी। छगनलाल रातभर लाठी लेकर खेत की सुरक्षा में बैठा रहा और जागता रहा, दिनभर का थका था, मेहनत करता था, सो नहीं सका, उसे गुस्सा आया उसने 2-3 बार लाठी से गाय को डराने, धमकाने का प्रयास किया किन्तु जब वह बार-बार आयी तब उसने लाठी का प्रहार किया और वह लाठी गाय के मर्म स्थान पर लगी गाय के उसी क्षण प्राण पखेरू उड़ गये।

प्रात:काल जब हुआ छगनलाल को बड़ा दु:ख हुआ कि गाय मेरे हाथ से मर गयी, यद्यपि छगनलाल का मारने का भाव नहीं था किन्तु गाय तो मर ही गयी, उसी के खेत में मरी उसी की लाठी से मरी पूरे गाँव में मगनलाल ने यह बात कह दी, कि छगनलाल गाय का हत्यारा है। गाँव में पंचायत बुलायी गयी वहाँ छगनलाल को भी बुलाया गया, छगनलाल से कहा-तूने गाय की हत्या की है गाय का हत्यारा हमारे गाँव में नहीं रह सकता गौहत्या महापाप माना जाता है। छगनलाल की पत्नी धनवती कहती है तुमने ऐसा पाप क्यों किया? उसका बेटा धनदेव कहता है आपने यह अपराध क्यों किया? छगनलाल अपने मन में सोचता है-कि मेरे पाप का उदय तो देखो मेरी पत्नी और पुत्र भी मेरा साथ नहीं दे रहे वे भी समाज के साथ एक स्वर में कह रहे हैं कि गाँव से बाहर निकाल दो। छगनलाल बेचारा भूखा-प्यासा थका हारा सभी ने उसे गाँव के बाहर निकाल दिया।

वह बहुत रोया, गिड़गिड़ाया मेरा क्या होगा? लोगों ने कहा इसका एक ही उपाय है दुबारा हमारे गाँव में रहना चाहते हो तो गाय की हत्या का प्रायश्चित करके आओ, उसका प्रायश्चित यह है कि सोने की गाय ब्राह्मणों को दान में दो। उसने कहा–मेरे पास इतना धन नहीं है। ठीक है गाय की पूँछ लेकर गंगा नहाने के लिये जाओ। वह अपने पत्नी-पुत्र से कहकर गंगा नहाने जाता है, मन में सोचता जा रहा है कि संसार बहुत स्वार्थी है पत्नी-पुत्र मित्र कोई किसी का नहीं है। जब वह पूंछ लेकर जाता है तो गाँव वालों से कहता है, गाय मैंने नहीं मारी मैं तो राम का भक्त हूँ उनकी आराधना करता हूँ गाय यदि मेरे हाथों से मरी है पर मारी तो राम ने है, मैं बेकसूर हूँ मुझे क्षमा कर दो। उन्होंने कहा यदि राम ने मारी है तो हम नहीं जानते, ये गाय की पूंछ राम जी को दो वे जाकर गंगा जी नहाकर आयेंगे।

वह बेचारा चला गया, भूखा-प्यासा रास्ते में वृक्ष के फल खाता हुआ, नदी सरोवर झरने का पानी पीता हुआ चला गया। घने जंगल में

एकांत में बैठा प्रायश्चित करता है कि मुझसे ऐसा कृत्य कैसे हो गया, धोके से, भूल से यह कृत्य मुझसे हो गया। हे भगवान् ! मुझे क्षमा कर दे, हे राम ! मैं तेरा भक्त हूँ ये पूंछ लेकर तू ही चला जा गंगा जी, मैं कैसे जाऊँगा। अकेले में वह फूट-फूट कर रोने लगा, अन्तरंग से उसके प्रार्थना निकल रही थी आर्त्तनाद हो रहा था, उसकी प्रार्थना, उसके करुण स्वर को सुनकर उस वन में रहने वाला कोई देव राम का रूप बनाकर आता है और कहता है भक्त ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ तूने वास्तव में गलती नहीं की है, चल-मैंने ही गलती की है तू पूँछ मुझे दे दे मैं गंगा जी नहाकर आता हूँ तुझे उस पाप से अभिशाप से मुक्त करता हूँ।

पूँछ लेकर राम के रूप में जो देव आया था वह चला जाता है। इधर जो छगनलाल था वह सोचता है-

पत्नी और पुत्र ने साथ नहीं दिया, उनके भाग्य में जो लिखा है वही उनका होगा, अब मैं घर नहीं जाऊँगा, मैंने संसार को देख लिया इस संसार में कोई किसी का नहीं है पति-पत्नी पुत्रों-मित्रों को स्वजन मानकर व्यक्ति पाप करता है मैं उनके लिये पाप क्यों कमाऊँ? मेरा एक पेट है मैं जंगल में फल खाकर, नदी सरोवर का पानी पीकर अपना जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। अब मैं सन्यासी बनकर अपना जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। भोगों में कोई सार नहीं है, शरीर रोगों का घर है ये संसार दु:ख पूर्ण है ऐसा सोचकर विरक्त होकर वह सन्यासी बन जाता है और साधना करने लग जाता है, उसे संयोग वशात् तपस्या करते हुये एक महात्मा जी मिले, जिनका नाम था-शंकेश्वरदास। वह उनके चरणों की सेवा करने लगा और तपस्या करने लगा। तपस्या करते-करते उसकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी अब उसके गुरु ने उसका नाम छगनलाल न करके इसका नाम हरिदास रख दिया, बाबा हरिदास के नाम से ये प्रसिद्ध हो गया।

जब पुण्य से इसकी ख्याति बढ़ने लगी आस-पास के नगर, ग्राम के लोग प्रार्थना करने आने लगे कि महात्मा जी हमारे गाँव में चलिये

वहाँ भागवत आदि रामायण का पाठ करवाओ, वह प्राय:कर जाता नहीं था किन्तु जब बहुत भक्त लोग पीछे पड़े तो फिर उसने आना जाना प्रारंभ कर दिया। उसके कार्यक्रमों में हजारों की भीड़ उमड़ने लगी। वह पीत वस्त्र पहनकर, मस्तक पर रामचन्द्र के प्रतीक आड़ा तिलक लगाकर, राम के नाम की चद्दर डालकर अपनी साधना करने लगा। उसके बहुत सारे चेले बन गये। एक बार बहुत बड़ा महोत्सव होना था, भण्डारा था जिसमें सैकड़ों गाँवों के व्यक्तियों को भोजन का निमंत्रण भी किया गया था। सबने चंदा भी लिखाया इस बड़े कार्यक्रम का पूरा श्रेय बाबा हरिदास को ही जा रहा था। बाबा के मन में भी बहुत उत्साह और आनंद था, उसकी भक्त और शिष्य मण्डली भी साथ में थी, मंदिर, पाण्डाल में लाखों की संख्या में भीड़ थी।

उसी समय एक व्यक्ति सामान्य युवा का रूप लेकर भीड़ को चीरता हुआ आता है और पूछता है कि यज्ञ कौन करा रहा है। सभी कहने लगे-तू क्या आकाश से टपका है या जमीन से पैदा हुआ है, तुझे मालूम नहीं कि ये यज्ञ तो बाबा हरिदास करा रहे हैं। अरे ! मुझे मालूम होता तो मैं तुमसे क्यों पूछता यह कहते हुये आगे बढ़ गया और मंच के समीप मंदिर में पहुँच गया। वहाँ सभी शिष्य मण्डली से पूछता है कि यज्ञ कौन करा रहा है तो सभी एक स्वर में बोले तू क्या जानता नहीं कि ये यज्ञ बाबा हरिदास करा रहे हैं-वे तो जगद्गुरु हैं। वह बोला नहीं मैं तो उन्हीं से पूछूँगा-सबको धक्का देते हुये वह अंदर बाबा हरिदास के पास पहुँच गया। उन्होंने अपना ध्यान छोड़ते हुये देखा कि कोई व्यक्ति उद्दण्डता पूर्वक अंदर घुस आया है, वे उठे और जाकर अपने सिंहासन पर बैठ गये। युवक ने कहा-महात्मा जी! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ कि ये यज्ञ कौन करा रहा है? बाबा हरिदास ने कहा-क्या तू जानता नहीं है यज्ञ मैं करा रहा हूँ।

जहाँ पूरी सभा जमी बैठी है सभी सोच रहे हैं यह कौन है जो रंग में भंग डालने आ गया, किन्तु वह इतना ताकतवर था कि कोई

भी व्यक्ति उसे पकड़ कर बाहर नहीं कर सकता था। जब सभी लोग उसे देख रहे थे तो उन्हें भी लगा ये कोई सामान्य पुरुष नहीं है, वह उस महात्मा को राम के रूप में दिखाई देता है और उस महात्मा से कहता है कि महात्मा जी यदि यज्ञ आप करा रहे हैं तो बहुत ठीक है किन्तु मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ-कि मैंने कभी गइया (गाय) नहीं मारी जब यज्ञ कराने वाले आप हैं, तो फिर गइया मारने वाले भी आप ही होंगे ये क्या बात हुई ''गइया मारी राम ने, यज्ञ करावें हम'' इसलिये ये पूँछ पकड़ो और पहले गंगा जी नहाकर आओ इसके बाद में यज्ञ कराना, इससे पहले यज्ञ नहीं करा सकते। महात्मा को बहुत अफसोस हुआ कि मैं भूल गया था, जब मुझसे अपराध हुआ था तब मैंने दोष लगा दिया राम को कि गाय राम ने मारी है। आज जब पुण्य से मेरी प्रभावना हो रही है तो श्रेय मैं स्वयं ले रहा हूँ और यज्ञ कराने वाला स्वयं को बता रहा हूँ।

व्यक्ति इसी प्रकार से अपने अशुभ कर्म के लिये दोषी दूसरों को ठहराता है और शुभ कर्म कोई करता है तो श्रेय स्वयं ले लेता है, किन्तु जो व्यक्ति अपने शुभ और अशुभ दोनों कर्मों का कर्ता-धर्ता स्वयं को मानता है तब नि:संदेह उसे शांति मिलती है। या वह स्वयं को स्वीकार न कर पाये तो अपने दोनों प्रकार के कर्म का श्रेय अपने भगवान को, गुरु को दे तब उसके जीवन में दु:ख नहीं होगा। जो व्यक्ति दुहरी चाल चलते हैं अच्छे कर्म का श्रेय स्वयं लेते हैं और बुरे कर्म/अपराधों को दूसरों पर थोपना चाहते हैं उन व्यक्तियों को अपने जीवन में सुख नहीं मिलता।

वह बाबा हरिदास बहुत पश्चाताप करता है और जो राम के रूप में दिखाई दिया उसके पैर पकड़ कर रोने लगता है, वह कहता है अब कुछ नहीं तुम अपने अपराध की सजा स्वयं भोगो। सबके सामने उसकी पोल खुल गयी, इस प्रकार से सबके सामने उसे नीचा देखना पड़ा।

शिक्षा:

हम भी कभी इस प्रकार की गलती न करें, निष्पक्षता के साथ, सरलता-सहजता के साथ अपने शुभ-अशुभ कर्मों के भागीदार-जिम्मेदार स्वयं हैं ऐसा स्वीकार करें और यदि यह कर सकें कि बुरे कर्म का जिम्मेदार स्वयं को और अच्छे कर्म का श्रेय अपने गुरु को दें तो और ज्यादा अच्छा रहेगा, इससे कभी अहंकार का भाव नहीं आयेगा। बुरे कर्म का श्रेय खुद लेंगे तो आगे उनसे बचने का प्रयास करेंगे। यही आत्मकल्याण का मार्ग है।

पके बाल या कच्चा दिल

देखो! जब तक नारियल कच्चा होता है तब तक उसे ऊपर से चोट मारो या तोड़ो अन्दर की गिरी भी टूट जाती है, किन्तु जैसी ही नारियल पक जाता है तब बाहर से तोड़ने पर अन्दर की गिरी नहीं टूटती, क्योंकि पकने पर उसका बाहर के छिलके (आवरण) से सम्बन्ध टूट गया है इसलिए बाहर से टूटने पर भी वह सुरक्षित है। इसी तरह जिसका दिल कमजोर होता है वह अपनों (परिवारजनों) को दु:खी देखकर मोह के कारण रोने लगता है। कहते भी हैं, कि कच्चे दिल का है थोड़े में ही रोने लगता है, कच्चे वैराग्य वाले शरीर पर कष्ट आते ही रोने लगते हैं पक जाने पर वह आत्मा को शरीर से अलग कर देता है, यही तो भेद विज्ञान है और यही है अन्तर दृष्टि, आश्चर्य होता है तुमको देखकर कि तुम बाहर से पके पक जाने पर भी अन्दर से कच्चे हो? यह विसंगति ठीक नहीं है कि बाल पके हैं और दिल कच्चे का कच्चा! अभी तुम्हें न आत्मज्ञान हुआ है न भेद विज्ञान।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज

मीठे प्रवचन से

६

कर भला तो हो भला

दशार्ण देश आज से नहीं हजारों वर्ष पूर्व से प्रसिद्धि को प्राप्त रहा है, इस देश में अपनी जन्मभूमि के लिये, अपनी आन-बान-शान-मान के लिये मृत्यु तक को गले लगाने वाले वीर साहसी महापुरुषों ने जन्म लिया। यहाँ की वीर प्रसूता भूमि सदैव अन्य देशों के द्वारा सम्मान्नीय, स्मरणीय और श्रद्धेय रही है। इसी दशार्ण देश के निकट सिंहपुर नाम का एक नगर था, इस नगर में 'कुंभबल' नाम का राजा राज्य करता था, इस राजा की रानी का नाम था 'अम्बुजा'। राजा और रानी दोनों ही यथाशक्य अपने कर्त्तव्यों का निष्ठा के साथ पालन करते थे। इन्होंने अपने यौवन के कई दशक व्यतीत कर दिये, किन्तु अब तक इनके घर में किलकारियाँ मारने वाला कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। ज्योतिषी आदि से पूछने पर ज्ञात हुआ कि उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति तो होगी किन्तु तुम अपने पुत्र का मुख न देख पाओगे। रानी चाहती तो थी कि मुझे पुत्र प्राप्त तो किन्तु मेरे पति ही उसका मुख न देख पायें तो मुझे पुत्र न चाहिये। किन्तु नियति को कौन टाल सकता है, समय पाकर के रानी के गर्भ ठहरा ज्यों-ज्यों रानी का गर्भ वृद्धि को प्राप्त हुआ त्यों-त्यों राजा रुग्ण अवस्था को प्राप्त हो गया पुत्र जन्म के पहले ही राजा ने चिरकाल के लिये आँखें मूंद ली। रानी अम्बुजा अपने पुत्र को जन्म देकर कुछ दिनों बाद अपने पति का अनुगमन करती हुयी मृत्यु की गोद में समा गयी। पुत्र का नाम 'अरविन्द' रखा। जो कि कमल की तरह से सभी को प्रफुल्लित करने वाला हो, किन्तु यह तो ऐसा रहा कि कमल उत्पन्न हुआ जहाँ से उत्पन्न हुआ उसी स्थान का जल सूख गया, माता-पिता दोनों ही दिवंगत हो गये। परिवारी जन रिश्तेनातेदारों ने पालन पोषण किया, किन्तु न जाने इस जीव का कैसा पाप कर्म का उदय था कि शनैः-शनैः राज्य की सम्पदा सब नष्ट हो गयी।

कर्म बड़ा विचित्र होता है क्षणभर में राजा को रंक, रंक को राजा बना देता है। अरविन्द एक याचक और भिखारी की तरह से घूम-फिर करके अपना पेट भरता था, यद्यपि राजपुत्र था शरीर बड़ा गठीला, सुन्दर गौर वर्ण का था, किन्तु पाप ने इसका पीछा नहीं छोड़ा। जहाँ कहीं भी जाता, पाप इसके पीछे लग जाता, अपना पेट भरना भी इसके लिये मुश्किल हो जाता। कई बार भूखे पेट ही सोना पड़ता, उसकी यह दशा देखकर निकटवर्ती जनों ने कहा-तुम्हारा अभी तीव्रपाप कर्म का जोर है। तुम्हारे शरीर में विद्यमान लक्षणों से लगता है तुम्हें भविष्य में राज्य की प्राप्ति होगी। किंतु यह पाप का उदय कब तक चलेगा यह बात पूछने के लिये आप उन महात्मा के पास जाइये जिनकी बड़ी प्रसिद्धि है।

वे महात्मा जी सौराष्ट्र देश में गिरी नाम का एक नगर है उस नगर के निकट ऊर्जयन्त नाम का एक पर्वत है उसकी चोटी पर साधना करते हैं। वहाँ पहुँच कर पूछ लेना कि तुम्हारा कितना पाप का उदय है और आगे का भविष्य क्या है? यह वही ऊर्जयंत गिरी पर्वत है जो गिरनार पर्वत के नाम से आज सुविख्यात है जहाँ से जैनों के बाईसवें तीर्थंकर मोक्ष को प्राप्त हुये, इसके साथ-साथ कहा जाता है कि शम्बूक प्रद्युम्न कुमार इत्यादि और भी महापुरुष मोक्ष को प्राप्त हुये। इसी पर्वत पर श्री कृष्ण व रुक्मणि का विवाह हुआ। वह अरविन्द नाम का युवक उन महात्मा के पास जाने को तैयार हुआ। गमन करता जाता है मार्ग में जो कुछ खाने को मिला उसे ग्रहण करके अपना पेट भरता है। चलते-चलते एक दिन महेन्द्रपुर पहुँच जाता है वहाँ जाकर उसने देखा कि ये राज्य तो बहुत वैभव सम्पन्न है किन्तु राज्य में नीरसता छायी हुयी है, ऊँचा किला है, महल है, सेना है, सेनापति है किन्तु फिर भी नीरस सा है पूछने पर ज्ञात हुआ इस राज्य में राजा नहीं राजमाता है उसकी एक पुत्री है वह पुत्री भी जन्म से अंधी है इसलिये इस राज्य का आगे कोई भविष्य नहीं है। जब तक

राजमाता है तब तक वे सिंहासन पर बैठती हैं बाद में यहाँ का राजा कौन बनेगा कह नहीं सकते।

वह राजमाता के पास पहुँचा। राजमाता ने बड़े ही वात्सल्य से उसके आने का कारण पूछा-उसने अपनी सारी बात कह दी कि मैं ऊर्जयंत गिरि जा रहा हूँ वहाँ महात्मा से अपनी बात पूछकर आऊँगा, सुना है वे महात्मा अपने दिव्य अवधिज्ञान से जानकर सब बता देते हैं। वह राजमाता कहती है बेटा-मेरी एक पुत्री है जन्मांध है, सुना तो ऐसा है कि इसकी आँखों की ज्योति आ जायेगी किन्तु वह ज्योति कैसे आये और इसका भविष्य क्या है इसके बारे में महात्मा से पूछकर आना है। वह माँ से आशीर्वाद लेकर आगे बढ़ जाता है, जैसे ही आगे बढ़ा कुछ दिनों बाद वह जूनागढ़ पहुँच जाता है।

वहाँ पहुँचकर उसे एक बाग में रात्रि व्यतीत करनी पड़ी वह बाग किसी विशिष्ट श्रेष्ठी का था। वहाँ के माली ने उसका आतिथ्य किया, रात्रिभर ठहरने का स्थान दिया पुनः पूछा-महानुभाव लगता है आप बड़े ही उच्चकुलीन हैं, कोई महापुरुष हैं किन्तु वर्तमान समय में आपकी दशा को देखकर के लगता हैं कि विरोधी धर्म आपके अंदर विद्यमान है, महानता के लक्षण है किन्तु वर्तमान में निर्धनता की स्थिति है क्या आप बतायेंगे कि आप कहाँ जा रहे हैं? उस युवक अरविन्द ने उसे सारी बातें बता दी कि महात्मा के पास अपना भविष्य पूछने जा रहा हूँ। उस बाग के माली ने कहा यदि आपको हर्ज न हो तो एक बात मेरी भी पूछकर आना, मैं वृद्ध हो गया हूँ। इस बाग के कोने में पेड़ लगाता हूँ किन्तु पेड़ 2-4 महीने रहते हैं पुनः सूख जाते है चाहे कितना ही खाद पानी दिया जाये। युवक कहता है ठीक है मैं पूछकर आ जाऊँगा, वह और आगे बढ़ता है जूनागढ़ से चलते-चलते हिम्मतगढ़ पहुँच जाता है। वहाँ एक पहाड़ी थी उसी पहाड़ी पर वह विश्राम करने पहुँच जाता है।

वहीं किसी महात्मा का आश्रम था वहाँ पहुँचकर महात्मा जी से वार्तालाप करने लगा, वहाँ के महात्मा ने पूछा-वत्स कहाँ जा रहे हो ? उसने बता दिया मैं ऊर्जयंत गिरी में दिव्य ज्ञान धारी महात्मा के दर्शन के लिये व अपनी जिज्ञासा का समाधान जानने के लिये जा रहा हूँ। यह सुनकर के उस महात्मा ने कहा-बेटा ! मेरे बारे में भी पूछकर के आना कि मुझे सिद्धि की प्राप्ति क्यों नहीं हो रही ? वह प्रात:काल उन्हें प्रणाम कर आशीर्वाद लेकर वहाँ से चला गया और शनैः-शनैः पहुँच गया ऊर्जयंत गिरी पर्वत पर, जहाँ वे दिव्य तपस्वी तपस्या करते थे। उनके चरणों में पहुँचकर देखा तो बहुत लंबी लाइन लगी हुयी है सभी अपना भविष्य पूछने के लिये आतुर हैं।

महात्मा के पास इसका भी नंबर आया, किन्तु वहाँ का नियम यह था कि एक बार में केवल तीन ही प्रश्न पूछे जा सकते हैं किन्तु इस युवा के मन में चार प्रश्न थे एक स्वयं के बारे में पूछना, दूसरा वृद्धा माँ की जन्मांध पुत्री के बारे में पूछना, तीसरा उस बाग के माली के वृक्षों के बारे में पूछना, चौथा महात्मा जी के बारे में पूछना। वह सोचता है कि तीन ही प्रश्न पूछे जाने हैं तो किसके प्रश्न को छोड़ूँ ? महात्मा जी ने कहा-बेटा पूछो क्या पूछना चाहते हो? उसने सर्वप्रथम वृद्धा माँ की पुत्री के बारे में पूछा-पुनः क्रमशः तीनों (माँ, माली, महात्मा) के प्रश्नों को पूछा-उसने सोचा मैं तीन प्रश्नों में चौथा अपना प्रश्न छोड़ देता हूँ पुनः दुबारा कभी आकर पूछ लूँगा, उन तीनों ने बड़े ही विश्वास के साथ मुझसे अपने प्रश्नों के उत्तर लाने के लिये कहा है इसलिये पहले उनका प्रश्न पूछना जरूरी है। महात्मा जी ने पहले प्रश्न के उत्तर में कहा-वह राजकुमारी जन्मांध जरूर है किन्तु उसकी आँखों में रोशनी आ सकती है। रोशनी का उपाय केवल एक ही है यदि कोई शुद्ध कोहिनूर हीरा हो, उस हीरे के पानी से आँखों में निरंतर छींटे लगाये जायें तो आँखों में जो जाली छायी हुयी है वह कट जायेगी इससे उसकी आँखों में रोशनी आ जायेगी।

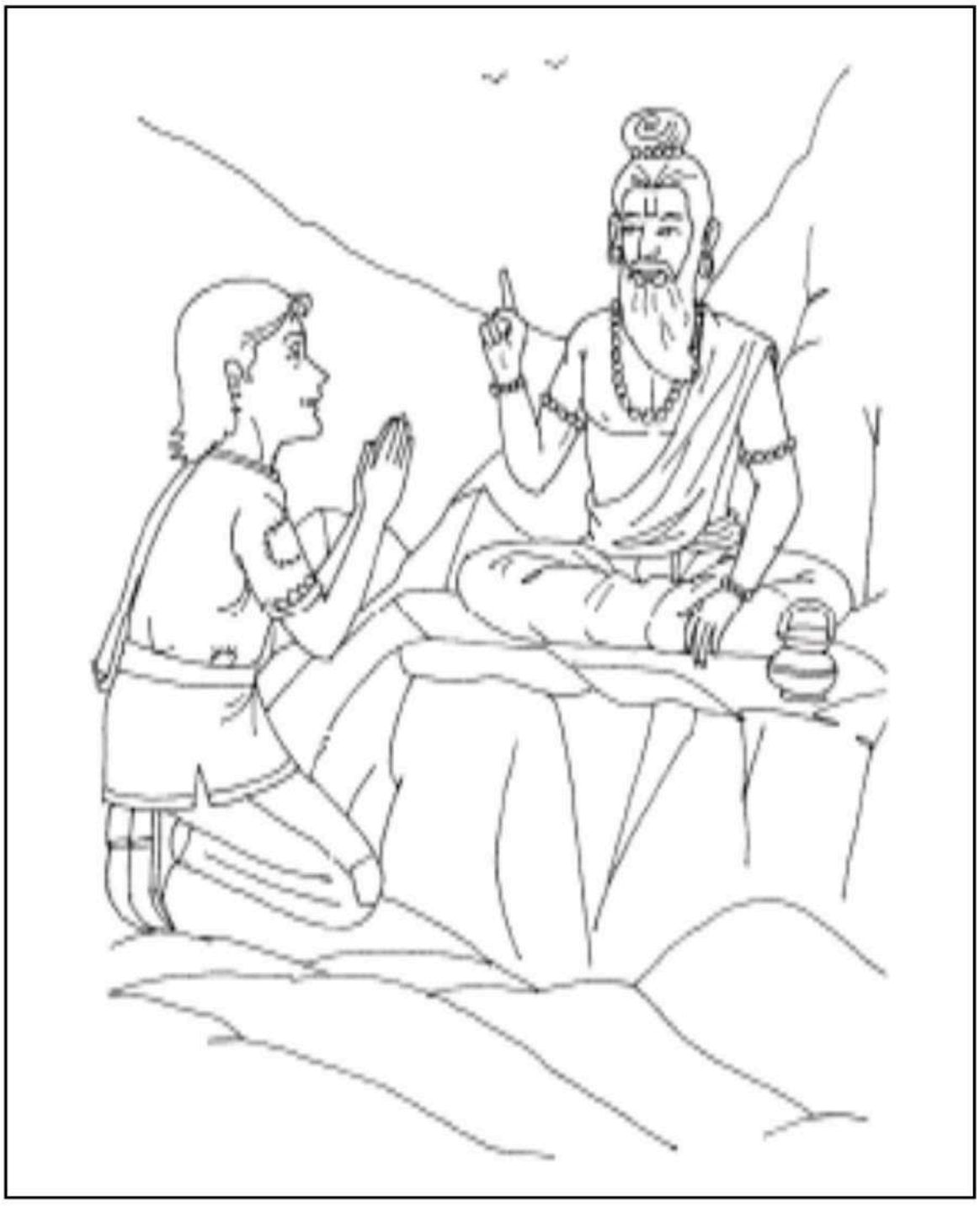

दूसरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा–जहाँ वे वृक्ष लगाते हैं उस स्थान पर जमीन में स्वर्ण कलश गढ़े हुये हैं उनमें रत्न, स्वर्ण मुहरें आदि भरी हुयी हैं, वृक्ष की जड़ें वहाँ तक जाती हैं किन्तु वहाँ उन्हें जल व खाद नहीं मिलता इस कारण वह पेड़ सूख जाते हैं। यदि वे स्वर्ण कलश निकाल लिये जायें तो उस स्थान पर पेड़ कभी सूखेंगे नहीं।

तीसरे प्रश्न के उत्तर में महात्मा जी ने कहा–उस महात्मा जी के मन में अभी आसक्ति का भाव है, परिग्रह में उन्हें आसक्ति है। उस महात्मा ने पहले अपनी ख्याति अर्जित की, धन एकत्रित किया और उस धन को एक हीरे के रूप में परिवर्तित कर लिया उनकी जटाओं के मध्य में वह हीरा आज भी रखा हुआ है उसके प्रति जो उनकी आसक्ति है इस कारण से उन्हें अपनी आत्म सिद्धि नहीं हो पा रही है, उस हीरे से उनका मन चंचल हो जाता है।

तीन प्रश्नों के उत्तर के बाद उन्होंने कहा-वत्स ! अब चौथा प्रश्न पूछने की इजाजत नहीं है तुम जा सकते हो। वह वहाँ से आया मन में बहुत आनंदित था उसने भले ही स्वयं के भविष्य के बारे में नहीं पूछा किन्तु उसने उपकार की भावना से तीनों के प्रश्नों के उत्तर ले लिये। वे पुरुष बड़े धन्य होते हैं जो दूसरों को प्रसन्न देखकर खुश होते हैं दूसरों की खुशी के लिये स्वयं के सुख का त्याग कर देते हैं। वह युवा लौटकर आ रहा है सर्वप्रथम महात्मा के पास (हिम्मतगढ़) पहुँचकर चरणों में प्रणाम किया और कहा-आपको सिद्धि इसलिये नहीं हो रही है क्योंकि आपकी आसक्ति है परिग्रह में। वह परिग्रह आपकी जटाओं में रखा हीरा है और यदि वह आप त्याग देंगे तो नि:संदेह आपको दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हो जायेगी। उन्होंने सोचा जब ये युवा मेरे हीरे की बात जानता ही है यह हीरा ही मेरी साधना में बाधक है तो क्यों न इसे निकाल दूँ आत्मसिद्धि ही सबसे बड़ा हीरा है। महात्मा ने जटा खोलकर हीरा निकाला और तुम धन्य हो तुम आगे महान पुरुष बनोगे ऐसा आशीर्वाद देते हुये वह हीरा उसे दे दिया। और कहा कि इससे तुम्हारा और लोक का कल्याण हो। उसने पहले तो मना किया किन्तु महात्मा का आदेश जान ग्रहण कर लिया।

वह आगे बढ़ता है (जूनागढ़) उसी बाग में जहाँ माली उसकी इन्तजारी कर रहा है माली ने उसका पुनः सम्मान और आतिथ्य किया। बाद में पूछा-क्या आपने महात्मा जी से मेरे प्रश्न का उत्तर

पूछा ? तो उस युवा ने कहा-अवश्य! महात्मा जी ने बताया है कि जहाँ पर आप पेड़ लगाते हैं वहाँ पर आठ स्वर्ण कलश गढ़े हुये हैं उनमें रत्न भरे पड़े हैं। पहले तो माली को विश्वास नहीं हुआ किन्तु खोदने पर सत्य साबित हुआ। यह समाचार माली ने बाग के मालिक श्रेष्ठी को भी दिया, उन्होंने खुश होकर आठ कलश में से चार कलश तो उस युवा को दे दिये और दो कलश माली को दे दिये और शेष दो कलश का धन श्रेष्ठी ने लोक उपकार के लिये प्रजा जन व दीन दरिद्रों में बाँट दिया। इस प्रकार वह युवा, श्रेष्ठी के आग्रह पर चार स्वर्ण कलश ले चल देता है।

इसके बाद वह वृद्धा माता के पास आता है। राजमाता ने पूछा-तो युवा ने कहा-तुम्हारी पुत्री की आँखों की रोशनी आ सकती है। उसने हीरे के माध्यम से पानी को गर्म करके, उस राजकुमारी की आँखों में निरंतर छींटे लगाये कुछ समय के पश्चात् आँखों में थोड़ी-थोड़ी रोशनी आने लगी पुनः पूर्ण रूप से आ गयी। राजमाता ने देखा ये युवा बहुत उत्साही है, सुंदर है, युवा है और राजकुमार के सभी लक्षण हैं, जब मेरी प्रार्थना से भगवान ने मेरे घर ही जमाई भेज दिया तब इससे बड़ा मेरा पुण्य क्या होगा, राजमाता ने अपनी कन्या की शादी उससे कर दी और राज्य का उत्तराधिकारी उस दामाद को बना दिया।

कहने का आशय ये है कि वह राजकुमार जिसका पहले पाप का उदय था गर्भ में आते ही पिता की मृत्यु हो गयी, जन्मोपरांत माँ की मृत्यु हो गयी, परिवारीजन छूट गये, भोजन मिल पाना भी मुश्किल हो गया, किन्तु उसके मन में जो परोपकार की भावना थी, दूसरों की सेवा करने की भावना, उनका दुःख अपनाने की भावना, अपना सुख त्यागने की भावना, इन सभी भावनाओं से उसने ऐसे पुण्य का संचय किया जिससे उसको जीवन में ये उपलब्धियाँ सहज में प्राप्त हो गयी। वह अमूल्य कोहिनूर हीरा मिला, चार स्वर्ण कलश मिले जो रत्नों से भरे थे, राजकुमारी मिली पत्नी के रूप में, पूरा राज्य मिला।

शिक्षा:

आप लोग भी अपने जीवन में परोपकार का संकल्प लें, दूसरों का हित करने का भाव रखें, अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये दूसरों को दु:ख न दें अपितु दूसरों के दु:ख को लें। अपना सुख त्यागने के लिये तैयार रहें, जो अपना सुख त्याग दूसरों का दु:ख लेते हैं उनके जीवन में सुख स्वयं ही आता जाता है दु:ख नष्ट होते जाते हैं।

चरणों की पूज्यता आचरण से

आचरण की पूज्यता से ही चरणों की पूज्यता है। जिसका आचरण ही पूज्य नहीं है, उसके चरण कौन पूजेगा? जो अपने चरणों को पुजवाता है, किन्तु आचरण से रिक्त है, ऐसा व्यक्ति आत्मघाती है, छली है, कपटी है, प्रवंचक है। वह स्वयं तो भव सागर में पतित होगा ही साथ ही अपने पूजकों व प्रशंसकों को भी पतित कर देगा, निर्दोष आचरण करने वाले महापुरुषों के चरणों की शरण को प्राप्त कर लेना, सदाचरण की ओर बढ़ाया गया एक कदम ही है जो आपको कभी लोक शिखर/सिद्धालय तक भी पहुँचा देगा।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज

मीठे प्रवचन से

७

अहंकारी का मुख नीचा

इसी भरत क्षेत्र में रथुनूपुर नाम का एक नगर था जहाँ पर धर्म का पालन करते हुये प्रजा सुख पूर्वक अपना जीवन यापन करती थी, प्रजा को सुख क्यों नहीं हो, जब राजा सुख का अनुभव कर रहा था तो उसकी प्रजा भी सुख का अनुभव कर रही थी। राजा भी धर्म में संलग्न था प्रजा भी धर्म में संलग्न थी। राजा कर्तव्य निष्ठ था प्रजा भी कर्त्तव्य निष्ठ थी यथा राजा तथा प्रजा। वहाँ के राजा का नाम हेमप्रभ था, नाम बड़ा सार्थक जैसा लग रहा था क्योंकि राजा का शरीर स्वर्ण की तरह से कान्तिमान था। उसकी प्रभा चारों तरफ फैली हुयी थी जैसे पुष्पों से सुगंध निकलती है और भ्रमर उसके इर्द-गिर्द मंडराते है उसी प्रकार राजा हेमप्रभ के शरीर से शान्त वर्गणायें निकलती थीं जो कोई भी व्यक्ति उनके पास पहुँचता था उन्हें भी शान्ति मिलती थी। महाराज हेमप्रभ की धर्मवत्सला, प्राण वल्लभा का नाम चन्द्रप्रभा था, ऐसा लगता था उसके शरीर से चन्द्र की प्रभा निकल रही है। वह अत्यंत शांत स्वभावी बहुत सुन्दर मानो रूप राशि एक जगह एकत्रित कर दी हो। सुन्दरता के साथ-साथ यदि गुणवत्ता जब दोनों एक साथ मिलती हैं तो ऐसा लगता है कि किसी पुष्प में सुगंध भर दी हो।

राजा हेमप्रभ रानी चन्द्रप्रभा दोनों ही सुंदर, गुणज्ञ, धर्मवत्सल एवं कर्त्तव्य निष्ठ थे, इसलिये प्रजा भी उसी प्रकार की थी। इन्हीं राजा के राज्य में इन्हीं का लाड़ला पुत्र 'रत्नशेखर' था। नाम तो 'रत्नशेखर' इसलिये रखा था जैसे मानों रत्नों का शिखर ही हो किन्तु प्रयास करने पर भी इसे कोई विशेष अच्छे संस्कार प्राप्त न हो सके। यह बचपन से ही लाड़-प्यार में रहा, कुसंगति में पड़ के इसके संस्कार बिगड़ते चले गये। यह बाल्यावस्था में आवश्यक सभी विद्याओं को प्राप्त न कर सका, कुछ ही अक्षर ज्ञान सीख सका, कलाओं में, विद्याओं में विशेष निपुणता न हांसिल की, किन्तु इस पर भी बहुत अहंकारी था,

अपने पिता का अहंकार था, अपने राज्य का अहंकार था, अन्य राजसी वस्तुओं पर अहंकार करने वाला एवं स्वयं ढींग मारने वाला व रहीस बनता था।

इसी नगर के समीप ही एक दूसरा नगर था जिसका नाम था विजयपुर जो वत्सदेश का एक छोटा सा उत्तम नगर था। यहाँ उस समय राजा दिग्विजय राज्य कर रहे थे। वे समझते थे कि मैंने सम्पूर्ण दिशाओं पर विजय प्राप्त कर ली भले ही उन्होंने अपने राज्य का विस्तार ज्यादा नहीं किया किन्तु अपने आप पर विजय प्राप्त करने का भाव था इसलिये अपने दिग्विजय नाम को सार्थक मानते थे। इनकी सहधर्मिणी प्राणवल्लभा का नाम ज्योतिर्माला था। जब महाराज अपनी पत्नी का स्मरण करते तो उन्हें लगता कोई दिव्य ज्ञान की ज्योति उनके अंदर जल जाती है वह वास्तव में ही गुणज्ञ, ज्ञानवान्, परमविदुषी महिला रत्न थी। इनके एक पुत्री थी जिसका नाम था अपराजिता, एक पुत्र था जिसका नाम था अपराजित। दोनों भाई बहिन बहुत अच्छे संस्कार शिक्षा व गुणों से युक्त थे, विद्याकला आदि के खजाने थे।

जब अपराजिता विवाह के योग्य हुयी, उसकी शादी के लिये बहुत से राजकुमारों के प्रस्ताव आये किन्तु महाराज संस्कारवान्, प्रतिष्ठित व योग्य राज्य में ही अपनी कन्या का पाणिग्रहण संस्कार करना चाहते थे। तभी महाराज के मन में ख्याल आया कि रथुनूपुर के पराक्रमी राजा हेमप्रभ व चन्द्रप्रभा का पुत्र रत्नशेखर के साथ यदि पुत्री का संबंध किया जाये तो बहुत उत्तम रहेगा। मंत्रियों आदि से विमर्श करने पर सबका यही सुझाव आया और उन्होंने रत्नशेखर के पिता के पास अपनी पुत्री के संबंध के लिये पुरोहित आदि को भेजकर प्रारम्भिक कार्यवाही शुरू की। महाराज हेमप्रभ ने यह संबंध स्वीकार कर लिया। किन्तु इसके साथ-साथ एक जानकारी रत्नशेखर के विषय में विशेष प्राप्त हुयी किंतु वह जानकारी संबंध होने के उपरांत प्राप्त

हुयी जिससे अपराजिता के माता-पिता बहुत दु:खी हो गये। बात यह थी कि रत्नशेखर ने संबंध के समय यह शर्त रखी थी कि मैं उस ही कन्या से शादी करूँगा जो कन्या प्रात:काल मेरे द्वारा प्रताड़ित होगी 100 जूते प्रतिदिन मारूँगा, जो सौ जूते रोज खा सकती है वह मेरी पत्नी बन सकती है। ये बात पुरोहित ने पहले नहीं बताई, पहले सोचा कि ये कोई मजाक की बात होगी कभी कहीं ऐसा होता है क्या? किन्तु यह तो रत्नशेखर की जिद्द थी शर्त थी।

कन्या को जब पता चला तब उसके माता पिता ने कहा हमें ऐसी जगह रिश्ता नहीं करना है हमारी कन्या राजकुमारी होकर अपने पति के सौ जूते खाये कभी नहीं? संबंध तोड़ने की बात आयी किन्तु कन्या ने कहा-नहीं पिता जी यह संबंध टूटेगा नहीं मैं अपना संबंध वहीं स्थापित करना चाहती हूँ उन्हें ही अपना पति बनाऊँगी जो मुझे सौ जूते देने की सामर्थ्य रखते हैं मैं भी तो उनकी सामर्थ्य देखूँ।

कन्या का पाणिग्रहण बहुत धूमधाम से गाजे बाजे से हुआ, यद्यपि इस शर्त के विषय में रत्नशेखर के माता पिता ने भी खूब समझाया किन्तु उसके समझ नहीं आया। विवाह के उपरांत प्रात:काल रत्नशेखर ने अपराजिता से कहा-तुम्हें मेरी शर्त के अनुसार पहले 100 जूते खाने पड़ेंगे तुम मेरी पत्नी हो यह मेरी पहली शर्त है। उसने कहा ठीक है मैं तुम्हारे सौ जूते खाने को तैयार हूँ किन्तु तब जब आप मुझे स्वयं कमाकर खिलाओगे। अभी तुमने मेरे लिये कुछ कमाकर नहीं खिलाया जब तुम कमाओ तब तुम सौ नहीं हजार जूते मारना, रत्नशेखर ने कहा-तू ऐसा कैसे बोलती है, सब मेरा ही तो है। बोली नहीं तुमने अभी कुछ नहीं किया सब पिता का ही राज्य तो है जब तुम पसीना बहाकर कमाकर मुझे खिलाओ तब मैं मानूँगी। रत्नशेखर अपने माता-पिता से कहकर कमाने जाने लगा, माता-पिता ने खूब समझाया किन्तु वह नहीं माना और चला गया।

(60)

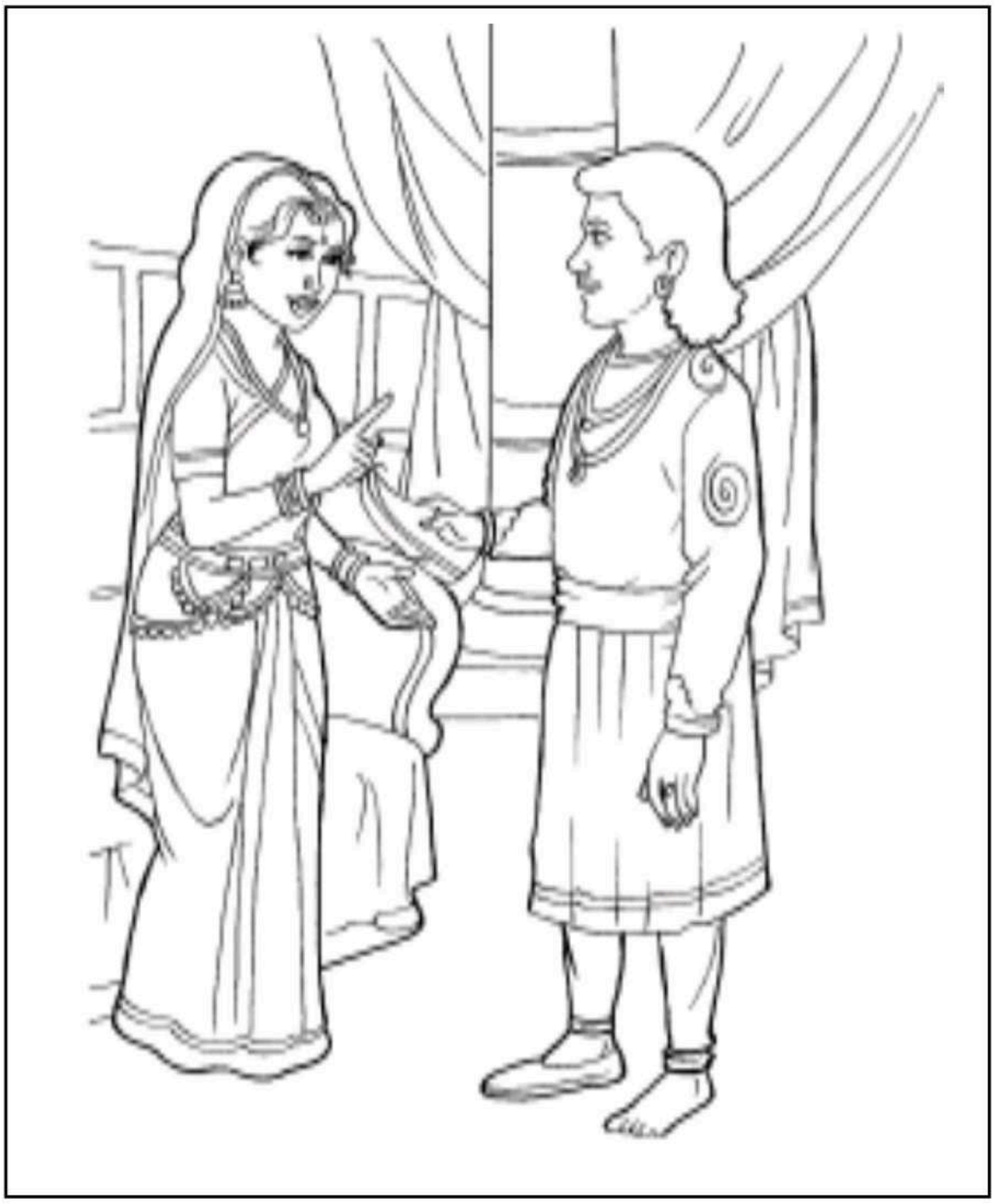

था तो राजकुमार, सुन्दर था, कोमल था कभी कोई काम किया नहीं था इसलिए कोई विशेष कार्य करने में असमर्थ था। कहीं भी वह नौकरी करने, मेहनत करने जाता तो सभी उससे मना कर देते थे ये काम नहीं कर पायेगा। एक जगह जाकर देखता है कि कहीं कोल्हू में तेल पेला जा रहा है वह वहाँ जाकर पूछता है क्या कोई काम मिलेगा बोले हाँ-मिलेगा। बैलों के स्थान पर इस कोल्हू को खींचो ये काम है। वह बोला ठीक है-इसके स्थान पर मुझे कुछ मिलेगा क्या? वह बोला

हाँ मिलेगा, भोजन मिलेगा पेट भर-पुनः पूछा भोजन में क्या मिलेगा? यह खली खाने को मिलेगी और महीने में एक रुपया मिलेगा। जब उसे कई महीनों तक नौकरी के लिये भटकना पड़ा तब उसने मजबूरन यह नौकरी स्वीकार कर ली।

उस कोल्हू वाले तेली ने उसकी नाक में छेद करके कोड़ी पहना दी और रस्सी डालकर उसे बैलों के स्थान पर चलाने को तैयार किया। उसके तेल से कपड़े गंदे हो गये, बहुत दिनों तक यूँ ही रहते-रहते बाल भी बहुत बड़े हो गये। बहुत दिन हुये माता-पिता ने अपने बेटे की खोज करने का बहुत प्रयास किया किंतु वह कहीं नहीं मिला। उसकी जो नई रानी अपराजिता थी वह भी बहुत विद्वान थी, वह रात्रि में भेष बदल कर घोड़े पर सवार होकर खोजती रहती, जब बहुत समय हो गया, कहीं नहीं मिले तो वह बहुत परेशान हो गयी किन्तु जहाँ-जहाँ उसके समाचार मिलते गये कि वे वहाँ-वहाँ से गये हैं वह वहीं ढूँढने चली जाती।

वह ढूँढते-ढूँढते वहाँ पहुँच जाती है और एक दिन रत्नशेखर को पहचान लेती है। यद्यपि चेहरा पूरा काला पड़ चुका था, शरीर बिल्कुल थक गया था सूख कर कांटा हो गया था, कपड़े पूरे तेल से भीगे थे, बाल बहुत बड़े हो गये थे, नाक में कोड़ी व रस्सी पड़ी थी फिर भी उसने उसे पहचान लिया। अपराजिता ने तेली (वहाँ के मालिक) के पास जाकर कहा-आप इसे छोड़ दीजिये-उसने कहा नहीं ये हमारे यहाँ नौकरी करता है-रानी ने उससे चर्चा की और कहा-हम तुम्हारा हर्जाना भरेंगे तुम इसे छोड़ो। उसे छुड़वाकर एक रुपया उस तेली से लिया, रत्नशेखर के बाल बनवाये, अच्छे वस्त्र पहनवाये और सम्मान के साथ रथ में बिठाकर राजमहल पहुँचाने का आदेश दिया और अपराजिता स्वयं जो पुरुष वेश में थी वहाँ से चली गयी।

राजमहल में रत्नशेखर भी पहुँचा प्रातःकाल एक रुपया लेकर रानी के पास आता है और कहता है-आ! पहले सौ जूते खा। तो, पुनः

अपराजिता ने वही बात कही-तुमने अभी मुझे कमा कर खिला नहीं दिया जो मैं आपके सौ जूते खाऊँ, कमाओ-लाओ-खिलाओ फिर सौ जूते खाऊँगी। रत्नशेखर ने एक रुपया निकाला और उसके हाथ पर रख दिया, तो अपराजिता ने एक पोटली खोली-एक रस्सी, एक कोड़ी, बालों की कटिंग, गंदे चिकने कपड़े उसमें से निकालकर रख दिये। उसे देखते ही रत्नशेखर को समझने में देर न लगी कि ये तो मेरे ही वस्त्र हैं, मेरी ही कोड़ी-रस्सी है किन्तु इसके पास कैसे आया, क्या इसे सब कुछ पता है, क्या इसी ने मुझे वहाँ की नौकरी से मुक्त कराया है? अपराजिता ने कहा-अब तुम और क्या कहना चाहते हो? तुम्हारा महीना अभी खत्म नहीं हुआ था, एक रुपया तुम्हें मिलने लायक नहीं था क्योंकि अभी माह पूर्ण नहीं हुआ उसने तुम्हें वह रुपया क्यों दे दिया, तुम्हें मुक्त कैसे किया? वह समझ गया कि घोड़े पर बैठकर जो पुरुष आया था, उसी ने मुझे मुक्त कराया है और वह ये ही थी जिसने भेष बदलकर वहाँ पर आकर मुझे ये एक रुपया दिलवाया।

रत्नशेखर ने कहा-इस पोटली को बस यहीं बंद कर दे, इस रहस्य को बस तू जाने और मैं जानूँ। आज से मेरा संकल्प है कि मैं कभी ढींग नहीं मारूँगा मैंने आज देख लिया कि मेरी इतनी सामर्थ्य नहीं है कि मैं कमाकर किसी को खिला सकूँ मैं अपने पिताजी के पुण्य से ही खा रहा हूँ। मेरा तो पुण्य ही नहीं है तेरा प्रबल पुण्य है तुझमें वास्तव में सामर्थ्य है जो तूने मुझसे शादी की। राजकुमार राजकुमारी से क्षमा याचना करता है। अब वे अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत करने लगे। इस प्रकार वह राजकुमार सुधर गया। अपराजिता ने रत्नशेखर को सुधार दिया वह पुनः न्याय नीति से राज्य का संचालन करने लगा। इसे देखकर राजा हेमप्रभ और रानी चन्द्रप्रभा भी संतुष्ट हुये कि हमारी लाडली पुत्रवधु ने हमारे पुत्र को सुधार दिया। अब वे दोनों राज्य संचालन करते है, हेमप्रभ और चन्द्रप्रभा ने भी समय पाकर

राजपाट का त्याग कर दिया और रत्नशेखर का राज्यतिलक कर दिया, इस प्रकार वे आत्मकल्याण के मार्ग पर बढ़ गये।

शिक्षाः

जब तक कोई व्यक्ति काबिल नहीं होता है तब तक वह अहंकार की बात करता है, तब तक ही दूसरों को दबाना चाहता है। योग्यता जब आती है तो दूसरों को दबा नहीं सकता, और जो व्यक्ति स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानता है वह जान ले कि छोटा व्यक्ति भी उससे श्रेष्ठ हो सकता है, गुणज्ञ, योग्य, विद्वान हो सकता है। अपराजिता भले ही नारी थी, फिर भी उसने रत्नशेखर के अहंकार को चूर-चूर कर दिया, केवल अहंकार ही चूर-चूर नहीं किया उसे एक नया पाठ भी सिखा दिया जिससे वह सुधर गया। इस कहानी से शिक्षा प्राप्त कर हमें भी सुधरना चाहिये।

उन्नति तभी जब उत्नति हो

उन्नति उसी की संभव है जिसकी उत्+नति हो। जो उत् अर्थात् अपनी आत्मा की ओर, निज स्वभाव की ओर नत हुआ है, उसकी उन्नति होती है जो ऐसा नहीं करता उसकी अवनति सुनिश्चित है, जिसकी नति इत् है वह तो भव में ही पतित रहेगा, जिसकी इत्+आस है उसका मन में वास है, उसकी चेतना पर कर्मों का पाश है, किन्तु जिसकी उत्+आस, आत्मा में आश है वही भव, तन, भोगों से उदास है, निज के पास है अब तुम नति+इत (यहाँ) मत करो, तुम उत्+नति करके अपनी उन्नति करो।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज

मीठे प्रवचन से

८

संयुक्त परिवार सुखी परिवार

भरतक्षेत्र में पुरिमतालपुर नाम का एक नगर था, जहाँ पर पूर्वकाल में वृषभसेन महाराज राज्य करते थे, यह वही वृषभसेन महाराज थे जो जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र थे। इतना ही नहीं, जब भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान की प्राप्ति हुयी तब महाराज वृषभसेन मुनि दीक्षा लेकर उनके प्रथम गणधर बन गये। उसी पुरिमतालपुर नगर में महाराज कीर्तिध्वज राज्य करते थे उनकी सहधर्मिणी प्राणवल्लभा का नाम सुकीर्तिमती था, इनके दो पुत्र थे मकरध्वज और धर्मध्वज। महाराज ने मकरध्वज को राजपद और धर्मध्वज को युवराज पद देकर के सन्यास को स्वीकार कर लिया।

इसी नगर में एक जिनदत्त नाम का वैश्य रहता था, उसकी स्त्री का नाम शिवदत्ता था। जिनदत्त अपने नाम के अनुरूप जिनदेव की पूजार्चना करने वाला, संतोषी प्राणी था, वह सरल और सहज स्वभावी था। इस जिनदत्त के सात पुत्र थे-क्रमशः देवदत्त, धनदत्त, गुणदत्त, ब्रह्मदत्त, इन्द्रदत्त, श्रीदत्त, प्रियदत्त। सातों ही बेटे बड़े प्रेम और वात्सल्य के साथ रहते थे। जिनदत्त ने अपने सातों पुत्रों का पाणिग्रहण संस्कार भी करा दिया, यथा क्रम से सुसेना, मृगसेना, पद्मसेना, विमला, कमला, धनश्री, रूपश्री नाम की कन्याओं के साथ वे प्रेमपूर्वक रहने लगे।

कुछ समय तो आनंद के साथ रहे किन्तु शनैः-शनैः आनंद के दिन अब निकल गये, घर में कुछ संक्लेशता होने लगी, उसका भी मुख्य कारण एक था, वह यह कि जिनदत्त अब वृद्ध हो चुका था उसके कुछ बेटे तो काम करते थे कुछ नहीं। देवदत्त-कृषिकार्य करता था, धनदत्त छोटा सा व्यापारी था, गुणदत्त रत्न पारखी था, ब्रह्मदत्त एक पंच बन गया था, इन्द्रदत्त जुआरी था, श्रीदत्त अंधा था और प्रियदत्त धर्मात्मा था, पूजा पाठ में संलग्न रहता था। देवदत्त प्रातःकाल

से लेकर संध्याकाल पर्यंत कृषि कार्य में ही जुटा रहता था और उसकी पत्नी उसका अनुकरण करती थी। धनदत्त-छोटा मोटा व्यापार करता उसकी पत्नी भी उसकी सहगामिनी रहती। किन्तु शेष पाँच भाई कोई विशेष काम नहीं करते, अभी परिवार संयुक्त रूप में ही रह रहा था, व्यवस्थायें ठीक चल रही थीं।

एक दिन देवदत्त की पत्नी सुसेना ने कहा-तुम सुबह से शाम तक सदैव काम में ही लगे रहते हो कभी विश्राम नहीं करते, तुम्हारा शरीर थक रहा है, घर में खाने वाले इतने सब हैं और एक तुम हो जो अकेले काम में लगे रहते हो। उसने कहा-अरे ! तू ऐसा क्यों कहती है हमारा यह परिवार है यदि हम ही इसका ध्यान न रखेंगे तो कौन रखेगा। मैं सब भाईयों में बड़ा हूँ मुझे उदारता के साथ सबकी सेवा करनी चाहिये, तो सुसेना ने कहा-नहीं सबको कार्य करना चाहिये। इसी तरह धनदत्त की पत्नी मृगसेना भी निरंतर धनदत्त से कहती रहती थी-अरे सुबह से शाम तक तुम व्यापार के काम में लगे रहते हो बच्चों की खबर तक नहीं लेते, मेरे बारे में तो सोचते तक नहीं हो। धनदत्त कहता-अरे भाग्यवान्! विश्राम करके कैसे काम चलेगा। धनदत्त ने बहुत प्यार से समझाया किन्तु मृगसेना तो उसके पीछे ही पड़ गयी। इधर सुसेना देवदत्त के पीछे पड़ गयी, बार-बार एक ही धुन कि हम तो न्यारे होंगे पिता जी से जाकर कहो, ये पाँचों भाई जब न कमायेंगे तब पता चलेगा कि कैसे खायेंगे।

दोनों भाई अपनी पत्नियों से पीड़ित होकर पिताजी के पास पहुँचे, पहुँचकर कुछ कहने का मन बनाया कि आँखों से आँसू बहने लगे। पिता जी बोले-बेटा तुम कुछ कहना चाहते थे, बताओ क्या कहना चाहते हो ? दोनों बिना कुछ कहे लौटकर आ गए। दो चार दिन बाद पत्नियों ने पुनः परेशान करना प्रारम्भ कर दिया तो फिर दुबारा गये। पिता जी ने कहा-तुम कुछ कहना चाहते हो, पहले भी आये थे किन्तु कुछ कह नहीं पाये, अभी भी तुम्हारे मन में कुछ कहने के

लिये है-कहो निश्चिंत होकर कहो क्या कहना चाहते हो? देवदत्त और धनदत्त दोनों ने मिलकर कहा-पिताश्री हम न्यारा होना चाहते हैं। पिताजी ने कहा-बेटा-न्यारे होने की स्थिति तो नहीं है तुम अगर न्यारे हो जाओगे तो घर को कौन संभालेगा, तुम दोनों बड़े हो तुम्हें पता है कि मैं वृद्ध हो चला हूँ, तुम्हारे छोटे पाँच भाई तो कुछ काम कर ही नहीं पाते, करते भी नहीं हैं कैसे सबका पालन होगा? वे बोले पिता जी सबको ही काम करना चाहिये, हम कब तक सबके लिये करें, पिताजी ने अपनी आँखों में आँसू भरते हुये कहा-बेटा ठीक है तुम्हारा कहना किन्तु फिर भी प्रत्येक इंसान को अपने-अपने भाग्य का मिलता है, तुम्हारा भाग्य ऐसा ही हो कौन जानता है। पिताजी भाग्य वगैरह कुछ नहीं है जब व्यक्ति काम करता है तो भाग्य भी उसका साथ देता है, काम ही न करे तो भाग्य कहाँ तक साथ देगा? अब हम ज्यादा नहीं कर सकते, हमारी जिन्दगी निकली जा रही है करते-करते, क्या बाद में कोई हमारे लिये करेगा क्या? हम तो न्यारा होना चाहते हैं।

पिताजी ने कहा-बेटा न्यारा तो हम आपको कर देंगे किन्तु हम सोचते हैं कि पहले जब तक हम संयुक्त परिवार में है तब तक एक तीर्थयात्रा साथ में कर लें, उसके बाद में हम आप सबको न्यारा कर देंगे। नियत समय पर सभी 7 भाई उनकी पत्नियाँ और माता-पिता सोलह प्राणी यात्रा के लिये निकले। बैलगाड़ी पर बैठकर चल दिये। पहले दिन का पड़ाव डाला, जिनदत्त श्रेष्ठी ने अपने बड़े पुत्र देवदत्त को बुलाया सौ रुपये दिये और कहा-बेटा ये 100 रुपये लेकर जाओ और हम 16 प्राणियों के लिये भोजन लेकर आओ। पिताजी के कहे अनुसार वह भोजन लेने के लिये गया-सोचता है 100 रुपये में होगा क्या कैसे व्यवस्था की जाये, जब उसे समझ में नहीं आया तो वह एक किसान के पास गया, जिसने अपने खेत के बाहर टमाटर खीरे आदि डाल दिये थे, मण्डी में वह सामान महँगा मिलता, इसीलिये

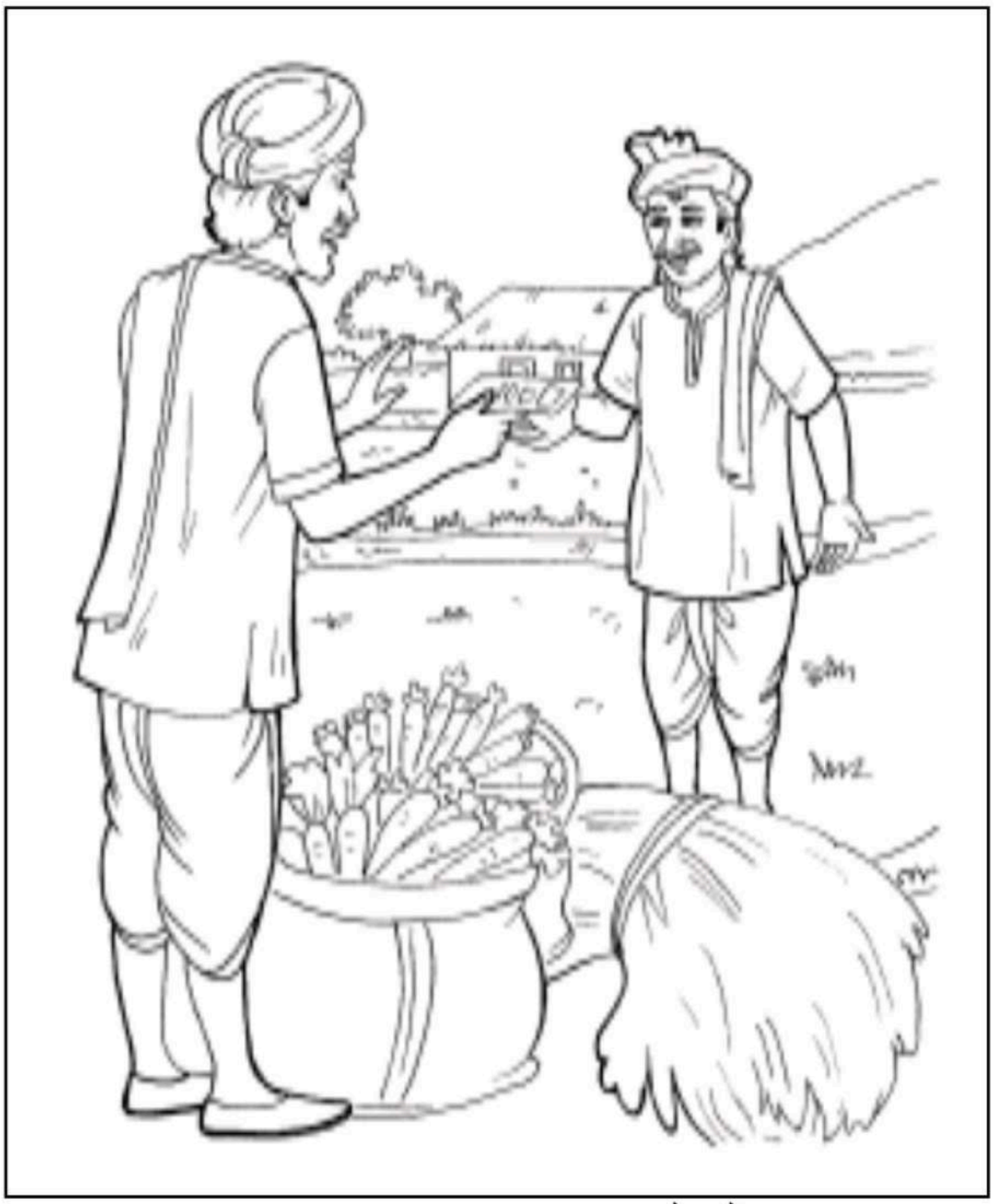

देवदत्त वहीं से 100 रु. में वह टमाटर खीरे और बैलों के लिये चारा ले जाता है और जाकर कहता है-पिता जी सौ रुपये में इतना ही आया, सबने यथाशक्य जितना खा सके उतने खीरे टमाटर खाये।

दूसरे दिन आगे चले, पुनः दूसरे बेटे धनदत्त को बुलाया 100 रुपये दिये कहा-तुम्हें सबके लिये भोजन पानी की व्यवस्था करनी है। वह बाजार गया मोल-तोल करता हुआ जहाँ सबसे सस्ता था वहाँ से सामान खरीदा। जहाँ महँगा मिल सकता था वहाँ बेचा ऐसे करके

उसने दिन भर में सौ रुपये के 500 रुपये कर लिये और सबके लिये भोजन सामग्री लाया। सामग्री इतनी तो नहीं आ पायी कि सभी का पेट भर सके फिर भी जो कुछ सूखी रोटी, सब्जी लाया उसे पूरे परिवार ने यथायोग्य ग्रहण किया।

अगले दिन जिनदत्त ने अपने तीसरे बेटे गुणदत्त को बुलाया 100 रुपये दिये और सबके लिये भोजन पानी मँगाया, वह मौजमस्ती में रहता था किन्तु गुणज्ञ था, वह जब जा रहा था तो मार्ग में देखा कि एक व्यक्ति काँच के टुकड़े लेकर उछालता हुआ चला जा रहा है, उसने उससे पूछा-बेटा इसको बेचोगे-उसने कहा हाँ। कितने का बेचोगे-वह बोले आप बताओ कितने दोगे-वह बोला मैं इसके 100 रु. दूँगा। वह राजी हो गया और 100 रु. देकर गुणदत्त उन्हें ले आया और जौहरी के पास ले गया, जौहरी ने कहा ये हीरा तो है किन्तु अच्छी क्वालिटी का नहीं है ये हीरा लगभग 10,000 रुपये का बिक सकता है। हीरा बेचकर वह गुणदत्त 10 हजार रुपये के माध्यम से सबके लिये यथेष्ट भोजन सामग्री लेकर के आया, बैलों के लिये चारा लिया, सभी ने बड़े ही आनंदपूर्वक भोजन ग्रहण किया।

सभी आगे बढ़े, चौथे दिन जिनदत्त ने अपने चौथे बेटे ब्रह्मदत्त से कहा-बेटा 100 रुपये लेकर के जाओ और सबके लिये भोजन पानी लेकर के आओ-वह सोचता है पिताजी को क्या हो गया, कहते हैं 100 रु. में सबके लिये भोजन पानी लाओ, पर 100 रु. से होता क्या है? किन्तु वह फिर भी जाता है, उसने सोचा क्या करूँ, वह पंच था, एक जगह पहुँचा वहाँ दो हवेली थी, उनके बाहर झगड़ा हो रहा था, दो महिलाऐं आपस में झगड़ रही थीं, वहाँ बहुत भीड़ लगी थी। पहली कहती है-आज मेरे महल में पूरे दिन में इसके अलावा और कोई नहीं आया है, संभव है मेरा नौलखा हार इसी ने चुराया हो। दूसरी कहती है, मैंने हार देखा तो था किन्तु सच कहती हूँ चुराया नहीं। बस इसी बात पर बहस हो रही थी।

ब्रह्मदत्त तभी वहाँ पहुँच जाता है और कहता है-यदि तुम्हें कोई हर्ज न हो तो मैं तुम्हारा निर्णय कर दूँ पर तुम मुझे क्या दोगी? जिसका नौलखा हार गुमा था-वह कहती है मैं तुम्हें 25000 रुपये दे दूँगी। दूसरी स्त्री जिस पर दोष लगाया जा रहा था सबके सामने उससे पूछा-तुम्हें चोर कहा जा रहा है यदि मैं तुम्हें निर्दोष साबित कर दूँ तो तुम मुझे क्या दोगी वह बोली मैं भी 25000 रु. दे दूँगी। उसने पहली स्त्री से पूछा-तुम्हारा हार कहाँ रखा था। बोली यहीं रखा था, इसके अलावा घर में और कोई आया ही नहीं, दूसरी स्त्री बोली मैं आई थी तो हार यहीं रखा देखा था किन्तु मैंने नहीं लिया। बाद में पूछा-हार कैसा था सोने का कि रत्नों का, पीछे उसमें धागा था या चेन थी पूरी जानकारी ली। स्त्री ने बताया रत्नों का हार चंदन की सुगंध युक्त रेशम की डोरी थी।

ब्रह्मदत्त ने विचार किया कि डोरी ही तो थी, पहनते-पहनते चिकनी हो गयी होगी। उस पर घी-तेल लगा होगा, इसलिए कोई जानवर ले गया होगा। आस-पास देखा दीवारों के पास संध थी, वहाँ देखता है छेद में कोई जानवर भी हो सकता है और ऐसा लग रहा था कि हार को कोई खींचकर के लाया है, वहाँ निशान से बने थे, वहाँ खोदना प्रारंभ किया तो देखता है वास्तव में अंदर बहुत गहरा छेद है, और खुदाई के उपरांत देखा कि वहाँ नौलखा हार पड़ा है। संभव है कोई चूहा उसे खींच कर ले गया था, हार को देखकर वह खुश हो गयी, जिस पर दोष लगाया था वह भी खुश हो गयी, निर्णय हो गया, दोनों ने 25,000-25,000 रुपये दिये 50 हजार रु. लेकर के वह बाजार में पहुँचता है, तीस हजार अपनी जेब में डाल लिये बीस हजार का सामान लेकर घर पहुँचता है, घर पहुँच कर सारी बात पिता जी को बताता है।

पाँचवें दिन इन्द्रदत्त का नंबर आया, बोला-पिताजी मैं आपका कपूत बेटा हूँ मुझसे कुछ नहीं होता। पिताजी बोले-बेटा चाहे कुछ भी

हो आज भोजन सामग्री तो तुम्हे ही लानी पड़ेगी। पिताजी ने 100 रुपये दिये और भेज दिया। इन्द्रदत्त जुआरी तो था ही पहुँच गया जुँए के फड़ पर। संयोग की बात जुँए में 1 लाख 80 हजार रु. उसके पास आ जाते हैं। उसने 10-20 हजार की तो भोजन सामग्री खरीदी बाकी रुपये अपने पास रख लिये। घर जाकर पिताजी को सारी बात बतायी और भोजन सामग्री वस्त्राभूषण सब दे दिये।

अगले दिन अगला पड़ाव आया-पिता ने अपने छटवें बेटे श्रीदत्त को बुलाया बेटा 100 रु. लो और भोजन सामग्री ले आओ। वह बोला-पिताजी मैं तो अंधा हूँ, वह रोने लगा। पिताजी बोले-चाहे कुछ भी हो आज सामान तो तुम्हें ही लाना है। वह बोला-पिता जी यदि आपको हर्ज न हो तो मैं अपनी पत्नी को अपने साथ में ले जाऊँ उन्होंने कहा ठीक है। उसकी पत्नी का नाम था धनश्री, वह धनश्री के साथ गया, चलते-चलते अंधे को ठोकर लग जाती है, उसने कहा-भाग्यवान्! रास्ते में ये पत्थर पड़ा है इसे अलग कर दे मैं तो गिर गया यदि मुझ सा दूसरा कोई अंधा आये वह भी ठोकर खाकर गिर न पड़े इसलिये इसे अलग कर दे। दोनों ने मिलकर अलग किया, देखते क्या हैं कि उस पत्थर के नीचे एक स्वर्ण कलश रखा है जिसमें हीरे मोती भरे पड़े हैं। धनश्री ने श्रीदत्त को तो एक स्थान पर बैठाया और स्वयं जाकर एक रत्न को बेचकर धन लाकर उससे भोजन सामग्री आदि सारा सामान ले आयी। घर पहुँची तो पिता जी को सारा सामान दे दिया। पिताजी ने वह कलश उसे ही अपने पास रखने को कहा।

अगला दिन आया, 7वें दिन सातवें बेटे को बुलाया जिसका नाम प्रियदत्त था, कहा-प्रियदत्त तुम्हें सौ रुपये लेकर के जाना है और सबके लिये भोजन पानी लेकर आना है। वह 100 रु. लेकर चला। सोचता है इतने दिन हो गये न तो भगवान का अभिषेक किया और न उनकी पूजन और भी कोई पुण्य का कार्य नहीं किया कहाँ फँस

गया। कहता है हे भगवान्! मुझे तो आपके दर्शन के बाद ही चैन पड़ेगी, वह पूरे दिन नगर में घूमकर मंदिर ढूंढता रहा। वीतरागी प्रभु के दर्शन करने के लिये अष्टद्रव्य खरीदता है और भगवान के मंदिर में जाकर पूजा पाठ करता है। मंदिर में बैठे-बैठे उसे बहुत देर हो गयी, वह तो अपनी भक्ति पूजा में लीन हुआ बैठा है, तभी उस मंदिर के यक्ष ने अपने अवधिज्ञान से जाना कि ये भगवान का भक्त है, इसका परिवार यहाँ ठहरा हुआ है वे सभी भूखे हैं और इसका इंतजार कर रहे हैं। यह बात वह अपनी यक्षिणी से कहता है तो वह कहती है हमें इसकी और इसके परिवार की रक्षा करनी चाहिये।

दोनों उसका रूप बनाकर गये और सामान से लदी गाड़ियाँ उनके निवास स्थान पर पहुँचा दी। सबने भोजन पानी किया। थोड़ी देर बाद वह बेटे का रूप बनाकर के गया हुआ यक्ष वहाँ से लुप्त हो गया। जब प्रियदत्त वहाँ पहुँचा तो जाकर बोला-पिताजी मुझे क्षमा करें मैं कुछ खाने-पीने के लिये नहीं लाया मैं तो भगवान की पूजा करके आया हूँ। पिता जी बोले-बेटा मजाक न कर अभी तो तू सारे सामान की गाड़ी की गाड़ियाँ लाया था। वह बोला-पिताजी जी मैं नहीं आया। पिताजी बोले हो सकता है कि तेरे पुण्य से कोई देव माया हो, यह सब देखकर सभी आश्चर्य चकित होते हैं, पुनः सब तीर्थ यात्रा कर लौट कर आते है।

घर में आकर पिताजी ने कहा-बेटा मैंने सबको 100-100 रु. दिये थे, उन रुपयों से कौन कैसी भोजन सामग्री लाया था सबने अपना-अपना भाग्य देख लिया-अब किस-किस को न्यारा होना है बताओ? बड़े बेटे से कहा-तेरे भाग्य में किसानी है दिन-रात तुझे पसीना बहाना है तब जाकर तेरा पेट भरेगा तूने पूर्व में कोई पुण्य नहीं किया। व्यापारी से कहा-तेरा पुण्य इससे थोड़ा अच्छा है तू इससे अच्छा भोजन जीवन में कर सकता है। तीसरे बेटा-जो रत्न पारखी था उसके भाग्य की भी सराहना की। चौथा बेटा-जो पंच था-उसके भी

भाग्य ने उसका साथ दिया, इन्द्रदत्त जो जुआरी था उसके भाग्य ने भी उसका साथ दिया, उसके उपरांत श्रीदत्त उसको भी धन मिल गया और सातवाँ बेटा प्रियदत्त-पुजारी था, भगवान का भक्त था अंधे को और पुजारी को तो भगवान ने इतना दिया कि जिंदगी भर बैठकर खायें कुछ भी न करें तो भी पर्याप्त है। क्योंकि पूर्व के पुण्य ने काम किया। पिता जी ने समझाया-प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने भाग्य का खाता है तुम ज्यादा मेहनत करते हो तुम्हें ज्यादा मेहनत करनी पड़ेगी, जो बिना मेहनत के खा रहे हैं उन्होंने पूर्वभव में बहुत मेहनत की थी, इसलिये आज उन्हें बिना मेहनत किये मिल रहा है।

सातों भाईयों ने निर्णय लिया कि हम जीवन में दुबारा कभी न्यारा होने की बात नहीं कहेंगे, हम अपने भाग्य का ही खाते हैं अलग रहेंगे तब भी हमारे भाग्य में यही बंधा है और साथ में रहेंगे तब भी यही मिलेगा। हमें किसी से अपनी तुलना नहीं करनी है, ईर्ष्या भी नहीं करनी है। और संयुक्त रूप से रहने लगे।

शिक्षाः

वर्तमान में जो लोग सोचते हैं मैं ज्यादा काम करता हूँ और न्यारे हो जाते हैं, उन्हें अपने भाग्य पर भी विश्वास रखना चाहिये संयुक्त परिवार में रहने से धर्म ध्यान की वृद्धि होती है, एकल होने पर व्यक्ति धर्म के लिये समय नहीं निकाल पाता है। इसलिये हमें मिलकर रहना चाहिये यही इस कहानी का तथ्य है।

९
अतिथि सेवा

वत्सकावती देश प्राग्वैदिक काल से भारत वर्ष का एक सुप्रसिद्ध देश रहा है। वत्सकावती का ये नाम शायद इसलिये भी हो सकता है वत्स का अर्थ होता है पुत्र, और वत्स का अर्थ होता है गाय का बछड़ा जैसे गाय का अपने वत्स के प्रति सहज स्नेह होता है, या किसी भी माता-पिता का अपने बेटे-बेटी के प्रति सहज स्नेह होता है, इसी प्रकार इस देश का राजा अपने प्रजा के प्रति पुत्रवत् स्नेह रखता था तब इस देश का नाम वत्सकावती इतिहास में सुप्रसिद्ध हो गया। इस देश ने प्रारंभ से ही अपनी राजधानी मृणालपुरी को बनाकर रखा, वहीं से पूरे देश का संचालन होता है यद्यपि इस राजा ने अपने और भी सामंत बनाये थे, ऐसा नहीं कि वर्तमान के राजा ने ही बनाये हो अपितु इसके पूर्व में भी जो राजा हुये उन्होंने भी अपने देश की सुरक्षा के लिये अलग-अलग सामंतों को नियुक्त किया था।

वर्तमान काल में जो प्रजा का पुत्रवत् पालन करता था जिसने माना कि अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो, विषयासक्ति को जीत लिया हो, कषायों पर कुठाराघात किया है जो कषायें अब तक उसकी आत्मा पर कुठाराघात करती रहीं उन कषायों को इसने अर्द्धमृतक सा बना दिया था, इसलिये इसका नाम 'जयसेन' वास्तव में ही सार्थक लगता था। महाराज जयसेन जितने धर्मज्ञ, गुणज्ञ, विज्ञ पुरुष थे, तो उनकी प्राण वल्लभा महारानी जयावती भी कम न थी, ऐसा लगता था जैसे दोनों एक रथ के दो पहिये हों, धर्म के मार्ग में दोनों की गति अबाध रूप से चल रही थी। बहुत ही सुयोग्य महिला रत्न थी जयावती।

इन दोनों के समयानुसार नंदिता नाम की पुत्री और आनंद नाम के पुत्र ने जन्म लिया। उनकी कन्या और पुत्र दोनों रत्न के रूप में थे उनमें उनके माता-पिता की छवि देखने को मिलती थी। दोनों बहुत

ही सुशील संस्कारवान्, शिष्ट, सदाचारी एवं विनयवान् थे। एक दिन राजा राजदरबार में बैठे हुये थे तभी ऋषि निवेदक ने आकर निवेदन किया-आज आपके नगर के निकट उद्यान में कोई महात्मा का संघ आया है, जिसके प्रभाव से जंगल का दृश्य ही बदल गया, सूखे तालाबों में पानी आ गया, सूखे वृक्ष हरे-भरे हो गये, छह ऋतुओं के फल-फूल एक साथ आ गये, यह सुनकर राजा बहुत आनंदित हुआ। उसने आगे कहा-महाराज ! ऐसे साधु-तपस्वी मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखे। महाराज ! उनके तन पर एक भी धागा नहीं, यथाजात दिगम्बर हैं मैंने तो उनके पास एक लकड़ी का कमण्डल और मयूर पंखों की पीछिका देखी। महाराज जयसेन अपने आसन से खड़े होकर के सात कदम चलते हैं और उसी दिशा में प्रणाम करते हैं।

राजा ने नगर में यह ढिंढोरी पिटवा दी कि सभी को मुनिराज के दर्शन करने चलना है। महाराज अपने राज्यपरिवार एवं प्रजा के साथ उद्यान के निकट गये, वहाँ पर 'दमवर' नाम के मुनिराज अपने संघ के साथ विराजमान थे। राजा मुनिराज की तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार कर भक्ति करता है और उनका उपदेश सुनता है। राजा ने मुनिराज के मुख से सुना कि अतिथि सेवा का बहुत बड़ा फल होता है अतिथि सेवा बहुत बड़ा धर्म है-मुनिराज कह रहे थे-

अतिथि सेवा जगत में, पुण्य कर्म बलवान।
पाप कर्म की क्षय करे, देता सौख्य निधान॥

अतिथि सेवा की व्याख्या करते हुये उन्होंने कहा-अतिथि सेवा के माध्यम से सब पाप वैसे ही धुल जाते हैं जैसे जल के माध्यम से रक्त का दाग धुल जाता है। अतिथि सेवा करने से उतना फल मिलता है जैसे उत्तम भूमि में बोया हुआ एक बीज पुनः अनेक बीज रूप फलता है वह एक छोटा सा वृक्ष हजारों लाखों वृक्षों का सृजक होता है ऐसे ही अतिथि सेवा से एक ग्रास दिया हुआ भी दान वह निःसंदेह भोगभूमि के व स्वर्ग सुखों को देने वाला हो सकता है।

अतिथि सेवा से टलें विपत्ति मृत्यु दुष्काल।
नृप सुख, सुर सुख दिव्यतन, पाकर बनें निहाल॥

राजा के चित्त में ये दोनों ऐसे स्थित हो गये जैसे किसी ने पत्थर पर इन पंक्तियों को उकेर दिया हो। राजा महाराज की भक्ति वंदना करके जब लौट रहा था तब वह वनभ्रमण के लिये चला गया और प्रजा अपने देश में आ गयी। लौटते समय सूर्यास्त हो गया था, अंधकार हो गया था किन्तु राजा अकेला ही अंगरक्षक मंत्री आदि के बिना वनभ्रमण के लिये अपना भेष बदलकर घूमने लगा।

प्राय:कर के ऐसा वह कई बार करता था, तभी उसे किसी के रोने की आवाज सुनाई दी। वह रोने की आवाज सुनकर उसी दिशा में जाता है वहाँ घोड़े से उतर कर देखता है कि एक वृद्धा माँ रो रही है बड़े करुण स्वर में रो रही थी जिससे राजा का हृदय द्रवीभूत हुआ। वह पहुँचा और पूछता है-माँ आप कौन हो? उस वृद्धा ने कहा-बेटा मैं इस जंगल में रहने वाली एक वृद्धा हूँ। राजा ने पूछा आपके रोने का क्या कारण है?-बेटा मैंने सुना है कि इस नगर के राजा की मृत्यु सन्निकट है निश्चित माह, तिथि, दिन व समय बताते हुए वह वृद्धा बोली कि राजा के पास एक साँप पहुँचेगा। जिसके डसने से उसकी मृत्यु हो जाएगी। हमारा राजा बहुत धर्मात्मा है, प्रजा का प्राण है, उसके बिना प्रजा कैसे रहेगी, उसकी मृत्यु को सुनकर के, जानकर के मुझे बहुत दु:ख हो रहा है। वह बोला-माँ मृत्यु तो सबकी होती है, जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु तो निश्चित ही होगी वृद्धा बोली मृत्यु तो निश्चित है बेटा-किन्तु ऐसे असमय में राजा की मृत्यु यदि होती है तो प्रजा अनाथ हो जायेगी, उसका राजपुत्र भी छोटा है वह अभी राज्य को संभालने में असमर्थ है। इतना कह वह वृद्धा माँ रोने लगी। राजा भी थोड़ा दु:खी हो आगे बढ़ गया। यह सब बात वृद्धा माँ ने किससे सुनी यह पूछने राजा ज्यों ही पीछे मुड़ा तो देखा वहाँ कोई नहीं है। वह वास्तव में एक देवी थी जो वृद्धा माँ के रूप में स्नेहवश राजा को सावधान करने आई थी।

राजा लौटकर राजमहल आ जाता है। वृद्धा माँ ने मृत्यु का जो समय दिया था, राजा उस माह और तिथि की इंतजारी करने लगा। यदि मृत्यु आती है तो आने दो मुझे कोई डर नहीं। वृद्धा ने बताया था कि तेरी मृत्यु सर्प के डसने से होगी, उसने सोचा प्रभु परमात्मा की भक्ति करने से सर्प का विष भी निर्विष हो सकता है, भक्ति करने से अग्नि भी शीतल नीर हो सकती है, हो या न हो मैं निष्काम भक्ति करूँगा मेरे मन में कोई भी कामना नहीं है और मुनिराज के उपदेश

सुन अतिथि सेवा की जो तीव्र भावना उत्पन्न हुई थी वह भी करता रहा। उसका नियम था किसी भी अतिथि को वह बिना भोजन कराये नहीं जाने देता था, चाहे वह सामान्य सन्यासी हो या तपस्वी, वीतरागी यथाजात दिगम्बर अवस्था को धारण कर मोक्षमार्ग पर बढ़ने वाले साधु हों, कोई भी क्यों न हो, उसका यह नियम ही बन गया।

जब वृद्धा माँ (देवी) द्वारा बताया गया दिन सन्निकट आया, उसने सोचा वह सर्प भी मेरा अतिथि है जो मुझे डसने के लिये आ रहा है क्योंकि मेरे पास जो आता है उसे मैं अतिथि मानता हूँ, वह चाहे किसी भी प्रयोजन से आये किसी भी अच्छे या बुरे उद्देश्य को लेकर के आये मैं उसके साथ दुर्व्यवहार नहीं करुँगा। ऐसा नहीं कि वो मुझे डसने आ रहा है तो मैं उसे मार दूँ नहीं। अरे ! सूर्य चन्द्रमा भी तो सभी पर समान रूप से अपना प्रकाश देते है, अरे ! पुष्प भी तो अच्छे बुरे सभी आदमियों को सुगंध देते हैं, अरे! वृक्ष भी तो अपने फल सभी को देते हैं, नदी भी तो सब को अपना पानी पिलाती है, राजा का भी कर्त्तव्य है सबके साथ अच्छा व्यवहार करे, सबको पुत्रवत् माने। यह सर्प मेरी प्रजा में ही है मैं उसका स्वागत करुँगा, आदर करुँगा।

जिस मार्ग से सर्प को आना था, उस मार्ग में पुष्प बिछवा दिये, जिससे सर्प को कोई कष्ट न हो, दोनों तरफ दूध के कटोरे रखवा दिये उसमें मिशरी शक्कर डाल दिया जिससे सर्प उसे पी ले। नियत समय पर जिस समय पर देवी ने कहा था सर्प डसने के लिये आया, सर्प पुष्पों की सुगंधि से बहुत आनंदित हुआ और नाचने लगा उसने दूध के कटोरे देखे और दूध पीता हुआ अंदर आया। वह मिष्ट दूध और सुगंधि से इतना संतुष्ट हुआ कि राजा के पास आया तो सही पहले तो उसका डसने का ही मन नहीं था किन्तु जैसे ही डसा तो राजा की भक्ति से, अतिथि सेवा से जहर चढ़ता ही नहीं है वह ज्यों की त्यों रहता है, तब सर्प सोचता है यह पुण्यात्मा है मेरा बैर इसके प्रति था,

मैं इसे डसने आया आज मैं इससे अपना बैर खत्म करता हूँ और इसको क्षमा करता हूँ। इसने मुझे अपना शत्रु नहीं माना अपितु अतिथि मान मेरी सेवा की। अब मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इसकी सेवा करूँ उपकार को चुकाऊँ क्योंकि बैर निकालने के लिये तो मैं सर्प बना इसकी मृत्यु के लिये आया, किन्तु इसका पुण्य ज्यादा है वह अपने मस्तक से मणी निकालकर उसे देकर जाता है और उसके चरणों में अपना मस्तक रख कर पटकता है और पुनः लौट जाता है। महानुभाव ! वह सर्प अतिथि सेवा से मित्र बन गया, उसका विष निर्विष हो गया और जो मृत्यु देने आया था वह मणी देकर चला गया।

तो जो कोई भी व्यक्ति सेवा करता है उसको सब अनुकूलताएँ मिलती है। एक कहावत भी है जो करता है सेवा, उसको मिलती है मेवा। अतिथि के रूप में भगवान भी आते हैं, कौन जानता है कब किसके वेश में कौन आ जाये। तुम्हारे घर में देश का विदेश का पता नहीं किस भेष का कौन व्यक्ति अतिथि रूप में आ जाये-

''जाने कब किस भेष में मिल जायें भगवान।
अतिथि सेवा नितकरो हे नर! श्रेष्ठ पुमान॥

शिक्षाः

हे श्रेष्ठ मनुष्य ! सदैव अतिथि सेवा करो, न जाने भगवान कब अतिथि के रूप में आ जाये। ''अतिथि देवो भवः'' अतिथि देवता है देवों का भी देव है। जो अतिथि की सेवा करना जानता है वह वास्तव में धर्मात्मा है अतिथि सेवा से वंचित धर्मात्मा नहीं हो सकता वह पापी है पामर है इसलिये आप और हम सभी धर्म के स्वरूप को समझते हैं, अपने कल्याण की भावना चित्त में जीवित है, मन में कहीं धर्म का नाम है तो आप सभी को अतिथि सेवा का संकल्प ले लेना चाहिये। यही इस कथा का सार है।

१०

जैसे को तैसा

इसी भरत क्षेत्र में कलिंग नाम का एक सुंदर देश है यह देश बड़े बड़े राजा महाराजाओं का रहा है। धर्मात्माओं द्वारा शासित यह देश संस्कारधानी के रूप में विख्यात रहा है। यह वही कलिंग देश है जहाँ सम्राट खारवेल राज्य करते थे, जो सम्राट खारवेल मगध अधिपति से जिनबिंब को लेकर आये थे, वही सम्राट खारवेल जिन्होंने कलिंगाधिपति बनकर उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक के पूरे भारतवर्ष पर कभी राज्य किया था, इन महाराज की महारानी सिंधुला व पुत्र उदय था। जो बड़ा धर्मात्मा, प्रजावत्सल था। इसी कलिंग देश में एक विजयदेव नाम का राजा राज्य करता था, इस राजा की रानी का नाम विजय सुंदरी था। दोनों राजा-रानी अपने कर्त्तव्य का पालन करते अपनी प्रजा के हित व सुख के बारे में सोचते थे।

इसी राजा के राज्य में एक सुव्रत नाम का श्रेष्ठी पुत्र था, वह सरल सहज भोला भाला था। संसार की माया, छलकपट से दूर था। इसकी श्रद्धा कर्म सिद्धान्त पर थी। जो जैसा करता है वह वैसा ही फल भोगता है। इसलिये वह छल कपट से दूर रहता, कहा जाता है जो व्यक्ति मायाचारी होता है वह सरल व्यक्तियों को भी उसी प्रकार का बना देता है। उसी नगर में एक 'भुजक्कड़' नाम का हसोड़ा रहता था। वह पूरे नगर में घूमता-फिरता रहता उसका काम लोगों को ठगने का था, नाम भी हसोड़ा था सबको हँसाता ही रहता था।

एक दिन सुव्रत अपने घर से बाजार की ओर जा रहा था, इसके हाथ में एक माला थी संयोग की बात मार्ग में उसे भुजक्कड़ मिल गया। उसने पूछा-ये माला लेकर कहाँ जा रहे हो? सुव्रत ने कहा इस माला को बेचने जा रहा हूँ। भुजक्कड़ बोला अरे ! बेचने कहाँ जाते हो मुझे बेच दो तुम्हारी माला दो आने से ज्यादा की नहीं है। लो दो

आने। बेचारे सुव्रत ने न मोल-भाव पूछा, दो आने लिये और आ गया। माता-पिता को जाकर सब बता दिया।

उसके बाद कुछ दिनों पश्चात् सुव्रत पुनः बाजार जाता है अब की बार मेमना लेकर जा रहा था, रास्ते में फिर से भुजक्कड़ मिल गया-कहता है-कहाँ जाते हो? बोला मैं यह मेमना बेचने जा रहा हूँ। वह बोला लाओ ये मेमना मुझे दे दो, ये चार आने से ज्यादा का नहीं है उसने कहा ठीक है और बेच देता है। एक दिन वह सुव्रत मस्ती में गाता हुआ जा रहा था-

ताधिन्ना भई ताधिन्ना, ताधिन्ना भई ता धिन्ना।
दो आने की माला बेची चार आने का मेमन्ना॥२॥

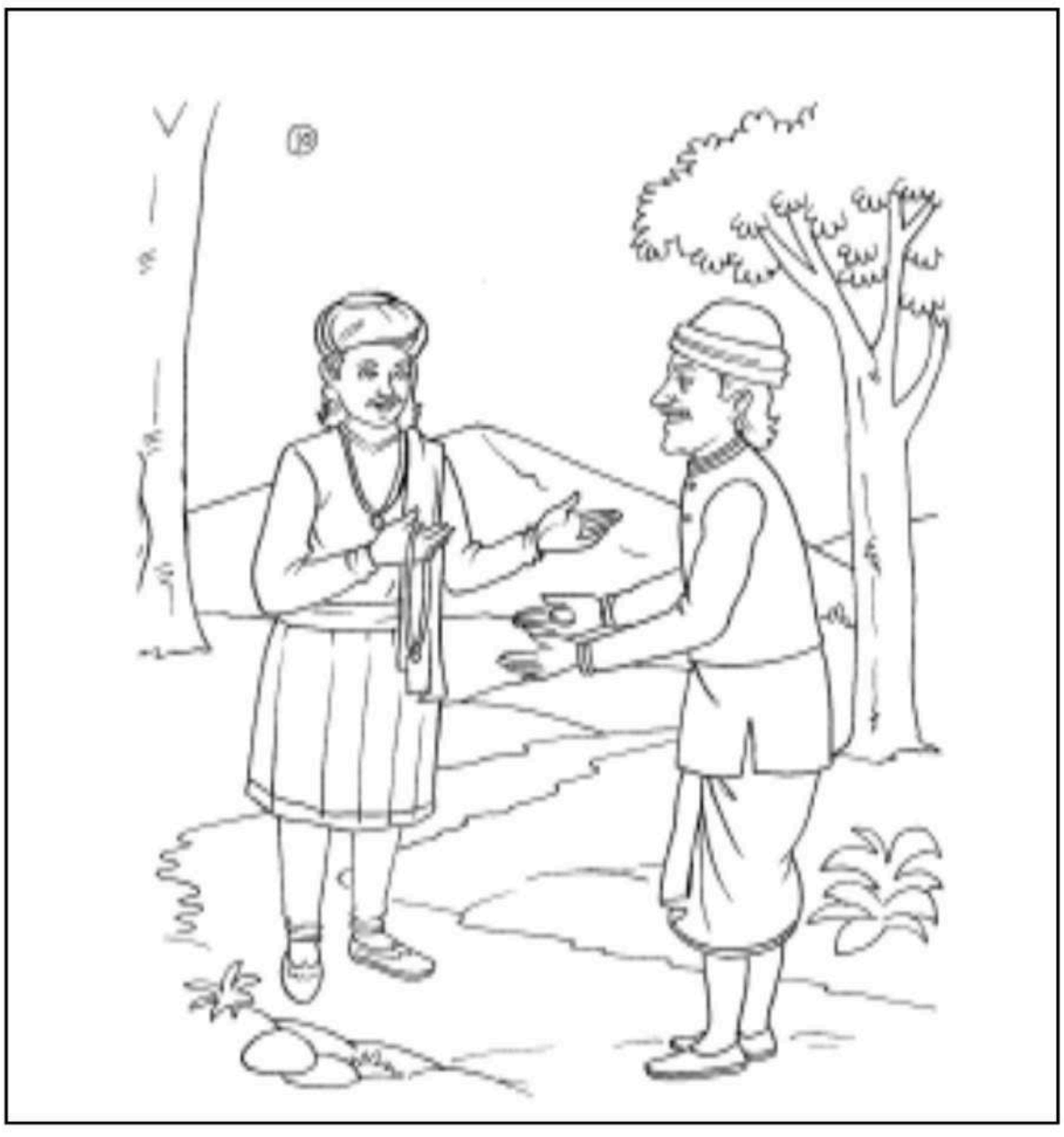

अबकी बार उसके हाथ में मूंगा था, मार्ग में पुनः भुजक्कड़ मिला कहाँ जा रहे हो, बोला-मूंगा बेचने, वह ठगी बोला-यह ज्यादा का नहीं है लाओ मुझे दे दो और 4 रु. उसके हाथ में थमा दिये, सुव्रत ने कुछ नहीं कहा। वह भुजक्कड़ तो मानो उसके पीछे ही पड़ गया हो, पुनः मिल गया, पूछा कहाँ जा रहे हो-तो कहा ये पन्ना है इसे बेचने जा रहा हूँ-वह बोला-नहीं कहीं नहीं जाओगे ये तो छोटा सा पन्ना है नकली है ये लो 8 रु. और जाओ। वह सुव्रत झूमता हुआ चला जा रहा है-वह सारंगी बजाते हुये चला जा रहा है-

ताधिन्ना भई ताधिन्ना ता धिन्ना भई ताधिन्ना।
दो आने की माला बेची चार आने का मेमन्ना॥

ताधिन्ना भई.....

चार रुपये का मूंगा बेचा ८ रुपये का लो पन्ना।

ताधिन्ना.....॥

सुव्रत सोचता है चार बार इसने मुझे ठग लिया अब क्या करूँ अब इसके साथ ऐसा व्यवहार करूँ जिससे इसे सबक मिल जाये। मेरे भाग्य का जो होगा वह तो मुझे मिल ही जायेगा, नहीं भी मिला तो भी कोई बात नहीं है। उसको सबक सिखाने के लिए अबकी बार उसने एक लोहे की बाँसुरी बनवाई और उस पर सोने का पानी चढ़वाया, बाँसुरी छिपाकर ले जा रहा था, और गाता जा रहा-ताधिन्ना भई ताधिन्ना.....भुजक्कड़ मिला-पूछा कहाँ जाता है वह बोला कहीं नहीं। भुजक्कड़ बोला अच्छा ! ये क्या छिपा रहा है और उससे छीन लिया, सुव्रत कहता है ये बाँसुरी है सोने की, बहुत मंहगी है मैं इसे नहीं दूँगा। वह कहता है ये तेरी बाँसुरी 100 रु. से ज्यादा की नहीं है सुव्रत कहता है ये लोहे की भी हो सकती है, भुजक्कड़ कहता है मुझे बेवकूफ बनाना चाहता है जरुर सोने की होगी चल 100 रु. पकड़ और भाग यहाँ से। सुव्रत भाग गया और गाता जा रहा है-

ताधिन्ना भई ता धिन्ना-२
सौ रुपये की बेच बांसुरी घर हम पहुँचे ताधिन्ना।
ताधिन्ना...।
चार बार तू मुझ ठग लीना, एक बार मैं ठग लिन्ना॥
ताधिन्ना....

भुजक्कड़ ये सब सुनता है और कहता है-आखिर तू कह क्या रहा है-**घर में जाकर देख बाँसुरी खबर लगेगी ता दिन्ना॥** भुजक्कड़ सोचता है लगता है मैंने इसे इतनी बार ठगा है इसने कहीं मुझे ठग तो नहीं लिया। घर जाकर बाँसुरी को घिसकर देखता है तो वह तो लोहे की निकली-अरे! मैं तो 100 रु. देकर के आ गया। मैंने जितना धन ठगने में लिया था उसने उसकी पूर्ति बाँसुरी में कर ली।

इस प्रसंग से इस कहानी में ये तथ्य निकलकर सामने आया कि व्यक्ति जो बार-बार ठगता है वह भी कभी न कभी ठगा जाता है। सुव्रत को अपनी ईमानदारी का जितना धन मिलना चाहिये वह प्राप्त हो गया।

शिक्षाः

संसार में कभी किसी को ठगने का प्रयास मत करो क्योंकि ठगा धन कहीं न कहीं निकल जायेगा, सुव्रत वह बाँसुरी छिपा कर ले जा रहा था, भुजक्कड़ ने 100 रु. देकर छीन ली हालांकि सुव्रत ने कहा कि लोहे की भी हो सकती है। सुव्रत ईमानदार रहा उसने ठगने का प्रयास नहीं किया। संसार में कोई व्यक्ति किसी का हिस्सा खा नहीं सकता छीन नहीं सकता बल्कि जितना हमारे भाग्य का है उतना ही मिलता है। इससे यही शिक्षा मिलती है कि हमें कभी किसी को ठगने का प्रयास नहीं करना चाहिये बल्कि यदि कोई हमें ठग ले तो ये सोचना चाहिये भई ठीक है मैंने इसे कभी ठगा होगा आज उसका ऋण चुक गया। यदि पहले नहीं ठगा है तो आज नहीं तो कल शेष पैसा आगे मुझे अवश्य मिल जायेगा इसलिये कभी विकल्प, विषाद, खेद नहीं करना चाहिये।

११

बहुत गयी थोडी रही

इस भरत क्षेत्र में एक मंगल नाम का उत्तम देश है। इस देश को मंगल देश यद्यपि इसलिये कहा जाता था कि इतिहासकारों की मान्यता थी कि वहाँ मंगल ही मंगल होते थे। प्रात:काल मंगलवाद्य ध्वनि के माध्यम से लोगों का सुप्रभात होता था, संध्याकाल में हरिकीर्तन, जिनभजन एवं धर्म के अनुष्ठान के साथ रात्रि का प्रारंभ होता था। मंगल का अर्थ-मं-पाप गल-गलाये जो पापों को गलाये अथवा मंग उत्कृष्ट सुख ल-लाये-जो उत्कृष्ट सुख लाये, पापों को गलाये। इस प्रकार मांगलिक क्रियाओं से युक्त मंगल देश था। उस समय वहाँ की राजधानी सुरम्यपुर थी। वहाँ के महाराज अनन्तवीर्य न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करते थे, राजा पराक्रमी था किन्तु उस राजा में एक कमी थी उसके जीवन में उदारता का भाव नहीं था, वह राजा प्राय:कर के धन को अधिक महत्व देता था, धन के लिये सब कुछ करने को तैयार था। लोगों ने कहावत बनायी है-''चमड़ी जाये पर दमड़ी न जाये'' लगता है यह राजा के ऊपर पूरी चरितार्थ होती है। वह अपनी प्रजा के दु:ख को भी कई बार नजर अंदाज कर देता, अपने राजकोष में जो धन आ गया उसे निकालना नहीं चाहता, वह यही सोचता था कि कैसे भी मेरा राजकोष बढ़ता चला जाये।

एक दिन एक नाट्यमण्डली राजदरबार में आयी और मंत्री के माध्यम से यह समाचार राजा तक पहुँच गया कि वह कौतुकी नामक प्रसिद्ध नाट्य मण्डली सभी राजाओं के यहाँ अपनी कला दिखाती है व पारितोष प्राप्त करती है। राजा अनंतवीर्य की सभा में भी उनका मन था कि वे अपनी कला दिखायें किन्तु राजा अनन्तवीर्य इसलिये नाटक नहीं देखना चाहता था कि दरबार में आ गये तो कुछ पारितोष देना पड़ेगा। किन्तु रानी मंत्री आदि सभी ने बहुत निवेदन किया, इसका नाम बहुत समय से सुनने में आ रहा है इसे देखने में कोई हर्ज नहीं

है। महाराज ने कहा-महारानी तुम नहीं समझती ये लोग तो ऐसे ही घूमते रहते हैं राजकोष में अभी वैसे ही बहुत कमी है, कर पूरा वसूल नहीं हो पाया है, कैसे पारितोषिक देंगे। महारानी ने कहा-ऐसी कोई बात नहीं है धन देना उचित पात्र को ठीक रहता है, मंत्री ने कहा-महाराज आप इसकी चिंता न करें।

नगरवासी उस मंडली का नाटक देखना चाहते हैं हमने कौतुकी मण्डली से बात भी की है उनका कहना है हमें कोई निश्चित धन राशि नहीं चाहिये। जो कुछ भी ईनाम में प्राप्त हो जायेगा हम उसमें संतुष्ट हो जायेंगे। यदि कुछ भी न मिलता हो तो हम महाराज से कोई याचना नहीं करेंगे, हम तो अपनी नाट्य मण्डली को राज दरबार में दिखाकर स्वयं को धन्य करना चाहते हैं। राजा ने स्वीकृति दे दी। रात्रि के प्रथम पहर से नाट्य मण्डली ने मंगलाचरण कर भजन गीत सुनाना प्रारंभ कर दिया, नये-नये कौतुक करना शुरू कर दिया, कभी नृत्य कभी कलायें और सजीव चित्रवत् नाटक प्रारम्भ कर दिया, बहुत भीड़ लग गयी। पूरा सुरम्यपुर नगर और आस-पास के सभी ग्राम वासी एकत्रित हो गये। उस नाट्यमण्डली की कीर्ति चँहु ओर फैली हुयी थी। सन्यासियों की टोली भी दरबार के एक ओर बैठी हुयी नाटक देख रही थी। नाटक चलता रहा बहुत देर तक चला बार-बार ताली बजती, बार-बार जय-जयकार की गूंज होती जिससे सिद्ध हो रहा था कि नाटक में बहुत आनंद आ रहा है।

रात्रि का अंतिम पहर शुरू हो गया, किन्तु अभी तक नाट्यमंडली को किसी ने पुरस्कार के रूप में एक पैसा भी नहीं दिया, अंतिम पहर भी बीतने लगा अंतिम घड़िया चल रही थीं, इतने में जो तबला बजाने वाला था, उसकी तबले की तान में कुछ अंतर आ गया, तो वह सूत्रधार जो था-वह समझाता है-

बहुत गयी थोड़ी रही थोड़ी हु अब जाये।
जा थोड़ी के कारणे क्यों रहे तान चुराय।

तबला वाला सोचता है कि मैंने पूरी रात तो तबला बजाया कोई भी इनाम नहीं आया कोई बात नहीं ऐसे ही मैं तबला अच्छे से बजाऊँगा बिना पुरस्कार के ही बजाऊँगा। सूत्रधार का यह दोहा सुनकर

(बहुत गयी थोड़ी रही....) महात्मा खड़ा होता है उसके पास एक कम्बल, चाँदी की खड़ाऊँ और एक छोटा बैतनुमा पाइप था जिसमें सोने के सिक्के थे वह सब कुछ नाटक मण्डली को दे देता है। महात्मा के पास अब केवल एक लंगोटी और कमण्डल था, गले में

जनेऊ था और एक पीला उत्तरीय वस्त्र था। इस प्रकार का महात्मा का त्याग देखकर पूरी सभा चकित हो रही थी, स्तंभित थी इस महात्मा ने इतना बड़ा त्याग क्यों कर दिया, यह लोग सोच ही रहे थे तभी राजकुमार खड़ा होता है अपने सोने का कड़ा हाथ से उतारता है और नाटक मण्डली को दे देता है, और बैठ जाता है, वह बैठ भी नहीं पाता तब तक राजकुमारी उठी उसने अपने गले का हार और हाथ की चूड़िया और भी कई सारे आभूषण उतारकर उस मण्डली को दे दिये। इसे देखते ही रानी भी चुप नहीं रह पायी रानी ने अपने कर्णफूल, नौलखाहार, टीका आदि बहुत सारा सामान पुरस्कार स्वरूप दे दिया। राजा यह सब देख बहुत आश्चर्यचकित होता है, नाटक समाप्त हुआ किन्तु राजा के मन में कौतुक हुआ कि सभी ने इतना सब क्यों दे दिया।

प्रात:काल हुआ वह रात्रि की नाट्यसभा प्रात:काल की सभा में परिवर्तित हुयी, वह हरिभजन नाम का जो श्रेष्ठ साधु जिसने कम्बल, खड़ाऊँ बेंत में रखे सिक्के और जटाओं में रखा हीरा दिया था उससे राजा ने पूछा-महात्मा जी! आपने यह सब पुरस्कार में क्यों दिया? महात्मा ने कहा-महाराज ! इसकी जो मैंने दो पंक्ति सुनी उसने मेरे अंतरंग के नेत्र खोल दिये जिससे मैनें सब कुछ दान कर दिया पुरस्कार के रूप में दे दिया, ये सब तो मुझे छोड़ना ही था।

इसने कहा-

बहुत गयी थोड़ी रही थोड़ी हू अब जाये।
जा थोड़ी के काज रे क्यों रहे तान चुराय॥

राजन् !

मेरी बहुत सारी जिंदगी निकल गयी, कब मेरी मृत्यु हो जाये मैं कह नहीं सकता किन्तु इसने मेरी आँख खोल दी, मैंने तपस्या की तो भी मैं सिद्धी नहीं कर पाया क्योंकि मेरी आसक्ति परिग्रह में रही और

मुझे ज्ञात हुआ कि यह परिग्रह ही तपस्या में बाधक है आसक्ति का कारण है इसलिये मैंने अपना कम्बल, चांदी की खड़ाऊ और वह सोने के सिक्कों वाला बेंत, और जटा में छिपाकर रखा दीर्घकाल का वह हीरा उसे दे दिया।

पुनः राजा ने राजकुमार के सन्मुख होकर पूछा-पुत्र ! कहो तुमने पुरस्कार क्यों दिया ? उसने कहा पिता जी क्षमा करें मेरी उम्र अब कम नहीं रही मैं अब 36 साल पूरे कर चुका हूँ। अन्य राजाओं के जो राजकुमार थे वे 16 साल में, 18 साल में युवराज बन गये किन्तु मैं सोच रहा था मेरे पिता मुझे युवराज बनायेंगे मैं राजकीय कार्य संभालूँगा किन्तु इंतजार करते-करते मैं बहुत थक गया। मैं आज सोच रहा था कि मैं 36 वर्ष का पूरा हो चुका मेरी जवानी अब लौटकर नहीं आयेगी। मैंने संकल्प लिया था कि मैं आज रात राजा की हत्या कर राजगद्दी प्राप्त कर लूँगा ऐसा मेरा भाव था किन्तु इसकी दो पंक्ति सुनकर के मन में ख्याल आया ''बहुत गयी थोड़ी रही''-पिताजी भी अब वृद्ध अवस्था को प्राप्त होने वाले हैं आज नहीं तो कल राज्य दे ही देंगे तू उनको मारने का संकल्प कर रहा है वह ठीक नहीं है इसने मेरी आँखें खोल दीं मुझे बहुत बड़े पाप से बचा दिया तो मैंने हाथ का कड़ा उतार कर उसे दे दिया।

पुनः राजकुमारी से पूछा-बेटी तुमने यह आभूषण आदि क्यों उतार कर दे दिये? वह बोली-पिताजी क्षमा करें मेरी उम्र 32 साल की हो चुकी मैं सोच रही थी आप मेरा पाणिग्रहण संस्कार करेंगे। मुझे मांगने वाले कितने ही राजा-महाराजाओं के प्रस्ताव आये, महाराज जयसेन उनका पुत्र पद्मनाभ, महाराजा शक्तिसिंह उनका पुत्र ध्रुवगति, महाराज बाहुबल उनका पुत्र अमिततेज, महाराज जितशत्रु उनका पुत्र सहस्ररश्मि, महाराज नरवाहन उनका पुत्र धवलध्वज आदि सब योग्य राजकुमार थे जिन्होंने स्वयं आकर तुम्हारी कन्या की मांग की किन्तु आपने यह सोचकर कि मैं अपनी राजकुमारी का विवाह करूँगा तो

धन खर्च करना पड़ेगा, मैं 32 साल की हो गयी आपने अभी तक कहीं मेरी शादी नहीं की, किन्तु आज रात मैंने योजना बनाई थी कि अब चाहे जो कुछ भी हो मैं राजा विजयसागर के पुत्र रश्मिकांत के साथ विवाह करूँगी वह मुझे नि:संदेह प्राणपन से चाहता है, मैं भी उसे चाहने लगी हूँ आज मैंने भागने की योजना बना ली थी, किन्तु जब मैंने ये दो पंक्तियाँ सुनी तब मेरा विचार बदल गया मैनें सोचा मेरी इतनी उम्र निकल गयी पिता जी आज नहीं तो कल मेरी शादी करेंगे ऐसे भागकर जाने से मेरा जीवन कलंकित हो जायेगा, इसलिये मैंने ये सब दे दिया और मैं बहुत बड़े पाप से बच गयी।

राजा ने रानी से पूछा–आपने यह सब क्यों किया? महारानी ने कहा–महाराज आप मुझे क्षमा करें आपके साथ रहते–रहते मुझे इतना समय हो गया आपने कभी मुझे तीर्थयात्रा नहीं करायी आपने कभी भी मेरी धार्मिक अनुष्ठान की भावनाओं को पूर्ण नहीं किया। मैं जब भी दान देने की कहती हूँ आप मुझे रोक देते हैं मैंने सोचा कि आप अपना कल्याण करेंगे शीलव्रत का पालन करते हुये सन्यास को स्वीकार करेंगे पर आपके मन में ऐसा भाव ही नहीं आता, फिर मैंने सोच लिया था कि मैं राज महल को छोड़कर चली जाऊँगी और अपना कल्याण करूँगी किन्तु इन दो पंक्तियों ने मेरी आँखें खोल दीं कि इस तरह से राजा कलंकित माना जायेगा इसलिये मैंने सोचा महाराज की बुद्धि आज नहीं तो कल सुबुद्धि को प्राप्त होगी। जब वे कल्याण के मार्ग पर चलेंगे तो मैं भी उनके पीछे–पीछे चलूँगी तब मेरा भी कल्याण होगा। अपने पति का तिरस्कार करके जाना मेरे लिये उचित नहीं होगा इसलिये मैंने अपने आभूषणों का त्याग कर दिया। राजा ने कहा ठीक है मैं अभी तक मोह की निद्रा में सोता रहा आज इसने मेरा भी मोह तोड़ दिया आज मैं अपने इस राज्य का परित्याग करता हूँ और आत्म कल्याण के लिये बढ़ता हूँ मैं अपने पुत्र हितंकर को राज्य देता हूँ। राजकुमार रश्मिकांत के साथ पुत्री प्रियंवदा का

पाणिग्रहण संस्कार करने की आज्ञा दी, और स्वयं वन की ओर प्रस्थान के लिये बढा रानी भी राजा का अनुगमन करती हुयी कल्याण के पथ पर बढी। मंत्री आदि भी अपने पुत्रों को मंत्री बनाकर आत्मकल्याण की भावना से राजा के साथ सन्यास ग्रहण करने चल दिये।

जीवन का कोई भरोसा नहीं है, ये जीवन इतना निकल गया, अभी और कितना शेष रह गया है कह नहीं सकते जो समय निकल गया वह ध्रुव सत्य है जो रह गया है उसके बारे में कोई गारण्टी नहीं है इसलिये कवि महोदय कहते हैं-

गयी सो तो गयी चेतन, रही को राख ले मक्खन।
करो हित निज आतम का न खा भवदधि में गोता है
अरे मूरख पड़ा मुसाफिर क्यों बेहोश सोता है
संभल उठ बांध ले गठरी समय क्यों व्यर्थ खोता है॥

इस प्रकार पूरी सभा विसर्जित हुयी, किसी ने अणुव्रत लिये, कोई भक्ति में लग गया, कोई सन्यासी बन गया, जो व्यक्ति पाप कार्य करते थे पाप कार्यों का त्याग करके धर्म की ओर अभिमुख हुये, छोटा सा निमित्त-दो पंक्तियाँ बहुत जीवों के कल्याण में निमित्त बनी। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति के लिये ये जरूरी नहीं है कि बहुत बड़ा उपदेश हो तभी वह कल्याण के मार्ग में लगे, ये जरूरी नहीं कि उसे बहुत बड़ी सीख दी जाये एक शब्द भी उसके मोह की नींद को तोड़ सकता है, एक वाक्य भी उसके अंतरंग में जाकर दिव्यज्ञान की ज्योति फैला सकता है।

शिक्षा:

आप सभी भी इन पंक्तियों को पढ़ सुनकर चिंतन करें, आपकी उम्र भी इतनी निकल गयी, आगे कह नहीं सकते इसलिये अपने जीवन में कोई पाप कार्य नहीं करना, पाप में आसक्त नहीं होना

भगवान से प्रार्थना करो हे भगवान् ! मुझे बिना बेईमानी के ही पेट भर भोजन मिल जाये। बिना पाप के, बिना अन्याय के ही अपना अपने परिवार का भरण पोषण करूँ और अपने कर्त्तव्य का पालन करूँ। हे भगवान् मुझे वही दे-

सांई इतना दीजिये जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु भी भूखा न जाय॥

इस प्रकार कर्त्तव्य का पालन करने की भावना भाओ यही श्रेयो मार्ग है।

आत्म निधि के भोक्ता

ब्रह्मचर्य का आशय ''भोग निवृत्ति भी है और भोग प्रवृत्ति भी।'' प्रथम तो पंचेन्द्रियों के विषयों से निवृत्ति होना आवश्यक है तदुपरान्त आत्म निधि के भोक्ता बनना भी अत्यंत जरूरी है। यह सब प्रवृत्ति तभी संभव हो सकती है, जब ब्रह्म स्वरूपी आत्मा में रमण होना प्रारम्भ हो जाये और ब्रह्मस्वरूपी आत्मा में रमण तभी संभव है जब मन से, वचन से, काय से, भव वनिता से रमण का त्याग हो। पर पदार्थों के साथ रमण करने वाला भव भ्रमण ही करता है अतः पर से नाता तोड़ना और अन्तरंग से पर को छोड़ना नितांत आवश्यक है तभी तो निज से नाता जुड़ना संभव होगा।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज
मीठे प्रवचन से

१२

समर्पण ही दर्पण

भारतवर्ष में विभिन्न देश उस प्रकार से शोभा को प्राप्त होते हैं जिस प्रकार किसी माला में विभिन्न प्रकार के फूल गुंथे होते हैं, कोई गेंदा का, कोई चम्पा, चमेली, कनेर, गुलाब, मंदार, पारिजात का, इसी प्रकार यह भारत देश है। दक्षिण पश्चिम उत्तर पूरब के मध्य में नाना प्रकार के जाति धर्म वर्ण सम्प्रदाय को मानने वाला अनेक प्रकार की संस्कृति, सभ्यता, शिष्टाचार, भाषा, वेशभूषा से युक्त यह देश अनेकता में एकता और एकता में भी विविधता की निशानी है। यह एक समन्वय और सामंजस्य का प्रतीक है।

अंगदेश की नगरी उस समय आदित्य पुरी थी महाराज आदित्य-राज वहाँ राज्य करते थे उनकी सहधर्मिणी कुन्दप्रभा थी। महाराज नि:संदेह सूर्य की तरह प्रतापी, तेजस्वी, न्यायप्रिय और सत्य के लिये प्रसिद्ध थे। महारानी भी कुन्दपुष्प की भाँति धवल आभा से युक्त थी, ऐसा प्रतीत होता था कि किसी देवांगना से कम न हो। उनका सौंदर्य राजा आदित्यराज को बहुत लुभाता था। महाराज के यहाँ एक यशवर्धिनी कन्या और राजवर्धन नाम के पुत्र ने जन्म लिया। माता-पिता के अच्छे संस्कारों के साथ वे भी वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे।

उसी आदित्यपुर नगरी में सारस्वत नाम का एक धर्मात्मा पुरुष रहता था वह अपने नैतिक कर्त्तव्यों का पालन करता। प्रात:काल जंगल में जाता वहाँ पर एक महात्मा जो की महर्षि अपराजित के नाम से प्रसिद्ध थे उनकी सेवा करता। महर्षि अपराजित अपनी साधना में संलग्न रहते थे। उनकी प्रभावना से प्रभावित होकर बहुत सारे भक्त भी आते थे किन्तु सारस्वत नि:स्वार्थ भाव से सेवा करता था। वह गुप्त रूप से सेवा करता था। सारस्वत के साथ एक व्यक्ति चंपतलाल भी था जो महर्षि की सेवा करता था। दोनों ने 12 वर्ष तक महात्मा

की बहुत सेवा की। महात्मा उनकी सेवा से बहुत प्रसन्न और संतुष्ट थे।

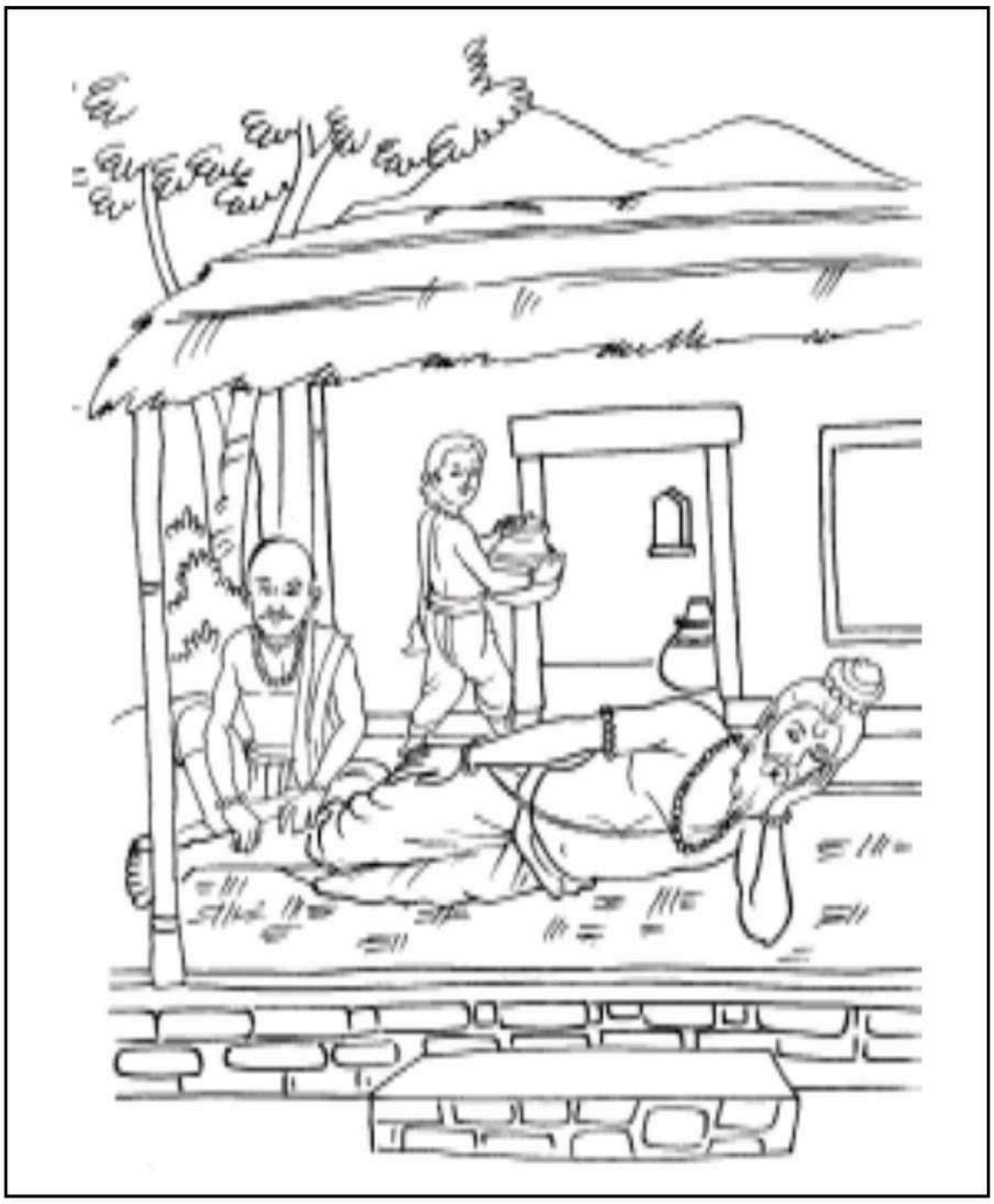

महात्मा ने सारस्वत से कई बार कहा–बेटा तुम मेरी इतनी सेवा करते हो मैंने तुम्हें आज तक कुछ नहीं दिया। सारस्वत कहता है–गुरुदेव सब आपकी ही तो कृपा दृष्टि है जो कुछ मुझे प्राप्त हुआ है सब आपकी कृपा से ही प्राप्त हुआ है, मुझे कोई वांछा नहीं है। वे कहते हैं–मैं देखता हूँ तुम्हारे परिवार का पालन पोषण भी अच्छे से

नहीं हो पाता होगा, तुम्हारी अवस्था को देखकर लगता है कि तुम्हारे पास आवश्यकता से कम धन है तुम्हें धन के साथ ही अन्य वस्तुओं की आवश्यकता हो सकती है तो मैं चाहता हूँ तुम्हें वह सब वस्तुयें प्राप्त हों । सारस्वत कहता है गुरुदेव ! आपने तो सदैव हमें सब कुछ दिया है, अब मैं आपसे क्या याचना करुँ। महर्षि जी कहते हैं-मैं कहता हूँ तुम्हें कुछ माँगना है, मैं तुम्हारी सेवा का ऋण लेकर के दूसरी गति में नहीं जाना चाहता समाधि से पहले मैं तुम्हारे इस भार से मुक्त होना चाहता हूँ, वह बोला गुरुदेव बस आपका आशीर्वाद चाहिये। बेटा-मेरा आशीर्वाद है जो तुम्हें माँगना है वह माँगो तुम्हें लेना ही पड़ेगा। गुरुदेव ! यदि आपका ऐसा ही आदेश है तो मैं विचार करता हूँ क्योंकि मेरे घर में और भी सदस्य हैं यदि वे कहते हैं माँगो तो मैं माँग लूँगा।

उसे विदा कर महर्षि जी चंपतलाल से बोले-तुमने भी मेरी बहुत सेवा की है, इतना कहना ही था तभी चंपतलाल बीच में बोल पड़ा-हाँ सेवा तो की है पर तुमने आज तक मुझे सेवा के बदले कुछ नहीं दिया है मुझे आपसे वरदान चाहिये। मैं सोच भी रहा था कि आप मुझे कुछ दो किन्तु आप तो समाधि की साधना में लगे हुये हैं आप तो चले जायेंगे मेरी सेवा का क्या होगा। महर्षि अपराजित सन्यास ग्रहण से पूर्व बहुत ही न्यायी, पराक्रमी राजा रहे थे उन्होंने अपने राज्य को सड़े तिनके की तरह छोड़ दिया था अपने सुयोग्य पुत्र जयवर्धन का राज्यतिलक कर आये और स्वयं जंगल में तपस्या करने आ गये। उनका वैराग्य, विरक्ति बहुत थी। वे निरासक्त भाव से रहते। उन्होंने अपनी तपस्या से बहुत पुण्य का संचय कर लिया था इसलिये उनके मुख से जो वाणी निकलती थी वह सत्य होती थी, उसी प्रकार से होता था उनकी वाणी वरदान हो जाती थी, वे प्राय:कर मौन रहते थे। चंपतलाल जैसे ही कहता है तो महात्मा जी ने कहा-तुम्हें भी आशीर्वाद मिलेगा, वरदान मिलेगा। किन्तु चंपतलाल पुन: बीच में बोलने लगता है नहीं गुरुदेव केवल मुझे ही नहीं मेरे परिवार में अन्य

दो लोग और भी हैं इसलिये मैं तीन वरदान माँगूगा, महात्मा जी बोले ठीक है तथास्तु।

अगले दिन चंपतलाल उसकी पत्नी दुर्गावती और वृद्ध माँ चूड़ावती प्रात:काल तीनों पहुँच गये। महात्मा जी को प्रणाम कर उनके पास बैठे। महात्मा जी ने कहा कहो क्या माँगना चाहते हो। सबसे पहले माँगने के लिये उसने अपनी माँ की ओर संकेत किया, पत्नी बीच में ही बोल उठी पहले मैं माँगूगी, चंपतलाल ने पत्नी को शांत किया और कहाँ माँ बड़ी हैं पहले उन्हें माँगना चाहिये। तीनों में बहुत वैमनस्य भाव था बहुत क्लेश रहती थी। पति की डांट सुनकर दुर्गावती शांत हो गयी, डाँट खाकर वह क्रोध से लाल हो रही थी किन्तु शांत होकर बैठ गयी।

माँ चूड़ावती ने कहा महात्मा जी मेरे बेटे ने आपकी बहुत सेवा की इसके बदले में मैं वरदान चाहती हूँ कि आप मुझे 16 वर्ष की नवयौवना युवती बना दें जो रूपराशि और सौन्दर्य की मूर्ति हो। महात्मा जी ने एक बार उसकी ओर देखा और कहा-तथास्तु। पलक झपकते ही नि:संदेह चूड़ावती नवयौवना रूप सम्पन्न कन्या बन गयी। किन्तु दुर्गावती ने ये जैसे ही देखा उसकी लाल आँखों से मानो लहु बहने लगा यह मेरी सास चुड़ैल, चाण्डालिनी जैसी ये तो देवकन्या जैसी बन गयी, ऐसा नहीं हो सकता। वह कहती है नहीं महात्मा जी! मैं भी आपसे वरदान मांगूगी महात्मा जी ने कहा-तथास्तु! दुर्गावती ने कहा-महात्मा जी! मैं वरदान मांगती हूँ मेरी सास गधी बन जाये। पलक झपकते ही उसकी सास गधी बन गयी और चरती हुयी वहाँ सामने दिखाई दी। तभी उसका बेटा चंपतलाल परेशान हो गया क्या करें माँ और पत्नी आपस में द्वन्द कर रही हैं अपनी घर की इज्जत बचाने के लिये अपनी माँ को गधी के रूप में नहीं देख सकता, वह कहता है महात्मन् ! मुझे भी एक वरदान मांगना पड़ेगा और मैं चाहता हूँ मेरी माँ को उसी दशा में कर दो जिस दशा में वह थी महाराज ने

तथास्तु कहा- और वे तीनों लौट कर अपने घर आ गये चौथा वरदान मांगने की इजाजत नहीं थी। चंपतलाल ने 12 साल सेवा भी की। वरदान भी मांगा किन्तु कुछ मांगकर भी न मांग पाया। और बेरंग जैसा गया वैसा ही लौट कर आ गया, अपने पुण्य को व्यर्थ में खर्च करके।

इधर महात्मा जी ने सारस्वत से कहा-बेटा कुछ मांगोगे नहीं-सारस्वत को संकोच हो रहा था क्योंकि जब वह घर गया, और जाकर अपने पिता को बताया कि-पिताश्री महात्मा जी मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मुझे वरदान देना चाहते हैं। मैंने तो मना कर दिया किन्तु जब उनका आदेश हुआ तब मैं सोचता हूँ कि क्या माँगू आप घर में ज्येष्ठ हैं हम सभी के लिये श्रेष्ठ हैं आप ही मुझे सलाह दीजिये कि क्या माँगू पिताजी बोले-बेटा तू तो घर के हालात जानता है टूटा-सा ये घर है जो बारिश में टपकता है, गर्मी में तपता है, सर्दी में कड़कता है। तू तो महात्मा जी से सुंदर सा सात मंजिल का मकान मांग ले और कुछ धन दौलत मांग ले। जिससे तेरी-मेरी और तेरे परिवार की जिंदगी सुख से व्यतीत हो सके।

वह कहता है ठीक है, वह जा ही रहा था कि कमरे में बैठी बूढ़ी माँ दिख गयी, वह सोचता है एक बार माँ से भी पूछ लेता हूँ कि वह क्या चाहती है जाता है और माँ को महात्मा जी द्वारा देने वाले वरदान के बारे में कहता है-और पूछता है माँ आप बताओ कि मैं वरदान में क्या माँगू माँ कहती है-बेटा तू जानता ही है तेरी अंधी माँ को क्या चाहिये, यदि मेरी आँखों की रोशनी आ जाये तो अपना बचा हुआ जीवन तुझे देखकर ही बिता लूँगी ऐसे घने अंधकार में तो मेरा जी घुटता है। वह कहता है ठीक है माँ और कहकर चला जाता है। अपने कमरे में पहुँचा, अपनी पत्नी का उदास चेहरा देखकर रहा नहीं गया, उसकी भी इच्छा जानने के लिये और ये सोचकर कि जब इसे वरदान की बात पता चलेगी तो सोचेगी क्या मैं परिवार का अंग नहीं हूँ, मुझसे नहीं पूछा-ये सब सोचकर उसने अपनी पत्नी से महात्मा जी के

वरदान के बारे में कहा और पूछा-तुम क्या चाहती हो। वह बोली आप भी कैसी बात पूछते हो क्या तुम मेरी मन की व्यथा नहीं समझते। हमारे विवाह को इतने वर्ष हो गये हैं और अभी तक हमारे घर का आँगन सूना है। महात्मा जी से आप हमारे संतान के बारे में कहो कि हमें उसकी प्राप्ति जल्दी से जल्दी हो जाये।

सारस्वत ने सभी की बातों को सुना और रातभर सोचता रहा, सोचविचार में उसे नींद ही नहीं आयी इस कश्मकश में कि किसके लिये क्या माँगू। और अभी उसने अपने मन की बात तो किसी से कही भी नहीं थी। सोचते-सोचते प्रातःकाल हो गया। उठा और महात्मा जी के पास पहुँच गया, संकोच कर रहा है जिन्होंने मुझे सब कुछ दिया उनसे क्या माँगू? पुनः महर्षि अपराजित बोले-पुत्र ! मैं वरदान इसलिये देना चाहता हूँ कि मैं तुम्हारी सेवा के भार से मुक्त हो जाऊँ और समाधि अच्छी तरह कर सकूँ।

यदि आप आदेशपूर्वक वरदान देते हों तो बस इतना ही दे दो- ''मेरी माँ अपने पोते को सातमंजिल के महल में रत्नों से जड़ित स्वर्ण के बर्तनों में खीर मिष्ठान्न आदि खाते देखे''

महात्मा जी ने तथास्तु कहा-और महात्मा जी के चेहरे पर मुस्कान आ गयी धन्य हो पुत्र धन्य हो! तुमने जिस प्रकार से वरदान माँगा तुम्हारी उदारता तुम्हारी दूर दृष्टि से तुमने जो सात खण्ड का महल मांगा है उससे सिद्ध होता है कि तुम निर्धन हो जब सात खण्ड का महल होगा, रत्नजड़ित बर्तन होंगे निःसंदेह उससे सम्पन्नता होगी और तुम्हारी मनोभावना पूरी होगी। मैं जानता हूँ कि तुम्हारी पत्नी निःसंतान है उसने तुमसे संतान मांगने की बात कही थी तो तुमने माँ का पोता कहकर पत्नी की इच्छा भी पूर्ण कर दी, तुम्हारी माँ बहुत समय से अंधी थी इसीलिये तुमने उनकी उस बीमारी को भी दूर कर दिया। जा बेटा तुम्हें सब प्राप्त हो जायेगा, उसने महात्मा जी को प्रणाम किया और लौट कर घर आया।

घर पर माँ, पत्नी, पिता जी बहुत खुश थे। कुछ दिन बाद पत्नी को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुयी, माँ ने उसी 7 खंड के महल में पोते को खीर खाते देखा, जिसे देख वह बहुत संतुष्ट हुआ। वह अपनी पत्नी से कहता है-अब मैं निवृत्त हो चुका हूँ माँ की सेवा करने के लिये तुम हो, तुम्हारी सेवा करने के लिये तुम्हारा बेटा है मैं संसार के बंधनों से मुक्त होना चाहता हूँ। यह संसार मुझे कैद की तरह प्रतिभासित होता है यह शरीर नश्वर है, रोगों का घर है मैं भोगों में आसक्त नहीं होना चाहता। अब मैं महात्माजी के चरणों में बैठकर उस पदवी को प्राप्त करना चाहता हूँ जिसे महात्मा जी ने प्राप्त किया था। वो तो उनका आदेश था इसलिये मैंने वरदान मांगा आप सबकी भावना पूर्ण हुयी, इतना वैभव छोड़कर जाता हूँ यह सब तुम्हारे पुण्य से है मुझे यह सब तुम्हारा भौतिक वैभव नहीं चाहिये मैं जिस समय निर्धन था तब भी मुझे आनंद आता था। आज भी मुझे कोई विशेष खुशी नहीं है। बस! महात्मा जी मुझे अपने चरणों में स्थान दे देंगे तब नि:संदेह मेरा मनुष्य भव सफल और सार्थक हो जायेगा।

सारस्वत का पुत्र जब 8 वर्ष का हुआ तब उसे सब सौंप कर के वह महात्मा जी के पास चला गया। जहाँ वो समाधि की साधना कर रहे थे वहीं वह उनके संकेतानुसार अपनी साधना में लग गया और धीरे-धीरे परिग्रह को कम करते हुये यथाजात दिगम्बर होकर पर्वत की गुफाओं, नदी, कन्दराओं में घोर तपस्या करते हुये देवत्व को प्राप्त हुआ और आत्मकल्याण के मार्ग को खोज लिया।

शिक्षा:

जिसके घर में क्लेश होती है, उस घर में कुमति का वास है वे कुछ भी नहीं माँग पाते चंपतलाल ने कुछ माँगकर भी कुछ नहीं पाया अपने पुण्य को व्यर्थ में खो दिया। सारस्वत ने गुरु के आदेश का पालन करते हुये एक बार में सब कुछ माँग लिया और अपना कल्याण कर लिया। इसलिये हमें परोपकारी बनना चाहिये, उदार

बनना चाहिये स्व पर हितैषी बनना चाहिये। हितैषी व्यक्ति ही सभ्य शिष्ट, भद्र और महापुरुष कहलाता है। जो ऐसा नहीं करता वह महापुरुष की गिनती में नहीं आता। चंपतलाल, महर्षि अपराजित जैसे पारसमणी रत्न को पाकर अपने को कुन्दन नहीं बना पाया। किन्तु सारस्वत शुद्ध लोहे की तरह था उसने पारसमणी से गुरु पाकर अपने परिवार को स्वर्गमय सुख दिये और स्वयं धर्म में संलग्न हुआ। आप भी अपने अंदर धर्म का बीजारोपण करें सत्यभाषी मिष्ट बनें आपस में प्रेम वात्सल्य से रहें आप भी नि:स्वार्थ भावना से किसी संत महात्मा की सेवा करें। स्वार्थ से की गयी सेवा वास्तविक मेवा को नहीं दे पाती, नि:स्वार्थ की गयी सेवा निश्चित रूप से परमात्म पद को देने वाली होती है। आप भी सारस्वत की तरह नि:स्वार्थ भाव से सेवा करो। यही इस कथा का सार है।

समाधान खोजो व्यवधान मत डालों

अध्यात्म के धरातल पर खड़े होकर व्यवहार जगत् में निहारने पर समाधान ही समाधान दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँ किसी से कोई शिकायत नहीं होती, किसी की निंदा और प्रशंसा की ओर भी मन आकर्षित नहीं होता। किन्तु व्यवहार के कीचड़ में डूबकर आध्यात्मिकता की निर्मलता का अहसास नहीं किया जा सकता। आत्मा की ओर निहारना आध्यात्मिकता है और पर की ओर निहारना व्यवहारिकता है। व्यवहार में डूबना व्यवधान ही व्यवधान है व आध्यात्मिकता में डूबना समाधान ही समाधान है। व्यवहार जगत् में कभी-कभी ऐसा लगता है कि कोई हमारे जीवन में व्यवधान डाल रहा है या हम किसी के लिए व्यवधान या समाधान बन रहे हैं किन्तु यथार्थता इससे परे है।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज

मीठे प्रवचन से

१३

गुणवत्ता से ही सौंदर्य

काशी देश परिव्राजक, एकदण्डी, त्रिदण्डी, दिगम्बर निर्ग्रंथ एवं अघोरी साधुओं की सुचिर काल से तपोभूमि रही है। बताते हैं यह वही काशी देश है जिसकी राजधानी कभी वाराणसी नगरी रही थी। कहते है जैनों के आठवें तीर्थंकर और तेईसवें तीर्थंकर का जन्म यहीं हुआ था, चन्द्रपुरी विख्यात मानी जाती है। उस समय यहाँ राजा अरिंजय राज्य करता था, उसकी सहधर्मिणी अभयमती नाम की रानी थी, जो कि अपने पति के लिये अत्यंत प्रिय थी। इसका पति इसके रूप सौन्दर्य को देखकर मोहित नहीं हुआ था अपितु उसके गुणों के समूह को देखकर ऐसे आकृष्ट हुआ था जैसे भ्रमर पुष्पों की गंध को देखकर आकृष्ट होते हैं। चाहे पुष्प का रंग कोई भी हो किन्तु गंध जब तीव्र होती है तो षट्पद अपने आप को रोक नहीं पाते। इस तरह राजा अरिंजय रानी अभयमती में बहुत आसक्त थे और स्नेह कर ऐसा मानते थे जैसे उन्होंने अभय अवस्था को प्राप्त कर लिया हो।

उन दोनों के कालक्रम से दो पुत्र और एक पुत्री हुयी। पुत्रों का नाम संवेगवर्धन और गुणवर्धन रखा पुत्री का नाम आलोक वर्धिनी रखा। सभी के प्रति प्रीति करने वाला, धर्म व धर्मात्माओं के प्रति अनुराग बढ़ाने वाला वह संवेगवर्धन पुत्र था तो दूसरा गुणों का समूह रूप गुणवर्धन था, उसमें स्वयं गुण वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे जैसे दूज का चाँद बढ़ता चला जाता है शुक्लपक्ष का चाँद बढ़ता चला जाता है ऐसे ही इसके जीवन में गुणों का संवर्धन हो रहा था। इसे देखकर अन्य लोग भी गुणों के प्रति उत्साहित होते, जिज्ञासु अभिलाषी एवं पिपासु बनते। आलोक वर्धिनी ने जन्म लेते ही मानो महलों में दिव्य प्रकाश भर दिया हो, तीनों ही संतान संस्कारवान्, सुशील, शिष्ट एवं विनय सम्पन्न थीं।

इसी नगर में एक धनंजय नाम का सेठ रहता था, वह यद्यपि धन का लोभी व लालची नहीं था किन्तु उसकी पत्नी दमयंती वह सेठ से विपरीत स्वभाव वाली थी, सेठ जितना सरल और सहज विचार वाला था दमयंती उतनी तेज दिखाई देती थी। यद्यपि बहुत परिश्रमी थी किन्तु छोटी-छोटी बातों पर रूठ जाती थी। इस सेठ के वीरसेन, शूरसेन, देवसेन, केतुसेन, धर्मसेन, महासेन, विष्णुसेन इस प्रकार सात पुत्र थे।

कालक्रम से सेठ धनंजय ने अपने सभी पुत्रों का विवाह किया। वीरसेन का चन्द्रप्रभा के साथ, सूरसेन का सुप्रभा के साथ, देवसेन का विमलप्रभा के साथ, केतुसेन का कुंदप्रभा के साथ, धर्मसेन का धर्मप्रभा के साथ, महासेन का दिव्यप्रभा के साथ, विष्णु सेन का श्री प्रभा के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। जब छः पुत्रों का विवाह हुआ उनकी पत्नियाँ आ गयीं तब दुर्भाग्यवश घर में बहुत कलह रहने लगी। काम करने के लिये नंबर लगा दिया-आज किसी का नंबर झाड़ू लगाने का तो किसी का बर्तन मांजने का, किसी का भोजन बनाने का तो किसी का कपड़े धोने का, पानी भरने का, मसाले आदि कूटने का इस प्रकार से सभी के अलग-अलग नंबर थे। नंबर लगे थे फिर भी घर में सब कुछ अव्यवस्थित था, कहीं बर्तनों का ढेर लगा है मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, कहीं कूड़ा कचरा पड़ा है। कोई भी पुत्र वधू अच्छा कार्य नहीं करती तब सारे काम सेठानी दमयंती को करने पड़ते थे और बहुयें सारी आराम से मौज मस्ती करतीं, घर के कार्यों से जी चुराती थीं।

कुछ समय बाद जब छोटे बेटे विष्णुसेन की शादी हो गयी, तो उसकी पत्नी विनयप्रभा ने देखा कि घर का माहौल तो बिल्कुल नरक जैसा बना हुआ है। हे भगवान् ! मैं कहाँ आ गयी? किन्तु सिद्धान्त को जानने वाली थी-सोचने लगी जैसे मेरे कर्म थे तदनुरूप मुझे फल की प्राप्ति हुयी है इसमें मेरे माता-पिता का कोई दोष नहीं है, किन्तु

उन्होंने जो मुझे अच्छे संस्कार दिये हैं उनसे मैं इस घर को बदल कर ही रहूँगी। वह प्रात:काल उठी देखा घर में सारा सामान बिखरा पड़ा है सारी जेठानियाँ सो रही हैं। सासु माँ ने सारा सामान समेटना शुरू किया, तभी विनयप्रभा आकर सासु माँ के चरणों में प्रणाम करती है कहती है माँ-हम सब के होते हुये आप झाड़ू लगायेंगी ? नहीं आप ऐसा नहीं करेंगी। माँ ने कहा-बेटी कल ही तो तुम्हारी शादी हुयी है। अभी हम तुमसे काम नहीं करवायेंगे तेरी अन्य जेठानियाँ है वे अभी थक गयी होंगी, कोई बात नहीं मैं कर लूँगी, किन्तु विनयप्रभा उनके पैर पकड़ लेती है-माँ अब आप काम नहीं करोगी और वह प्रात:काल

से ही झाड़ू लेकर झाड़ू लगाती है और सब जेठानियाँ देख रहीं हैं। सास सोच रही कोई क्या कहेगा बहु कल ही तो आयी है आज ही उसे घर के काम काज में लगा दिया।

विनयप्रभा कहती है माँ आप इसकी चिन्ता न करें, किन्तु सासु माँ फिर भी नहीं मानती कहती है लोग मुझे ताना देंगे। वह बोली कोई कुछ नहीं कहेगा, आप यह बताओ कि मंदिर में झाड़ू लगाने से पुण्य मिलता है कि पाप? अरे! कैसी बात पूछती हो बेटी! मंदिर तो भगवान का होता है वहाँ झाड़ू लगाने से तो पुण्य लगता है वह भी पूजा है। वह बोली माँ मैं इस घर को मंदिर मानती हूँ इसलिये मैं इसमें झाड़ू लगाऊँगी। इसके उपरांत वह देखती है नाश्ते का समय हो गया सब जेठानियाँ जग तो गयीं किन्तु देख रही हैं कौन क्या कर रहा है किसका नंबर आज नाश्ता बनाने का है, जिसका नंबर है वह सिरदर्द का बहाना बनाकर बिस्तर पर पड़ी है। विनयप्रभा कहती है माँ नाश्ता मैं बनाऊँगी। सास कहती है बेटी तू अभी-अभी ब्याह कर आयी है नहीं मैं तुझसे नहीं बनवाऊँगी। वह बोली माँ एक बात बताओ-मुनिराजों के लिये आहार बनाना पाप का कार्य है या पुण्य का। सास बोली वह तो पुण्य का कार्य है। बहु कहती है माँ यदि साधु त्यागी व्रती के लिये भोजन बनाना पुण्य का कार्य है तो मैं अपने माता-पिता जेठानियों-जेठ आदि को साधु-पुरुष मानती हूँ इसलिये मैं इनके लिये भोजन बनाऊँगी आप मुझसे यह पुण्य का कार्य क्यों छीनती हो माँ। विनयप्रभा वह कार्य भी अपने हाथ में ले लेती है। पुनः देखती है सभी के कपड़े इधर-उधर पड़े हैं। उसने सब कपड़ों को इकट्ठा किया पुनः धोने बैठ गयी, जिसका नंबर था वो आयी नहीं-सास ने कहा-बेटा तू इतना काम अकेली करेगी क्या? वह पुनः बोली माँ मंदिर में जो धोती-दुपट्टे होते हैं या प्रक्षाल हेतु अंगोछी वगैरह उन्हें धोने से पुण्य लगता है या पाप। बोली बेटा पुण्य लगता है। तो माँ तुम मुझसे पुण्य कार्य क्यों छीनती हो? माँ मैं तो इस घर को मंदिर मानती

हूँ और इसमें रहने वाले सभी सदस्य देवता हैं इनके वस्त्र धोने को मैं पुण्य कार्य समझती हूँ। इस तरह वह घर के सभी कार्य पानी भरना, मसालों को कूटना आदि को बहुत ही मन से अपना कर्त्तव्य मानकर करने लगी।

सास देखकर दंग रह जाती है जेठानियाँ अभी तक तो देख रहीं थीं कि देखते हैं कब तक सारे कार्य करेगी बड़ी आयी नई बहू बड़ा घर को स्वर्ग बनाना चाहती है। किन्तु 2-3 दिन के अंदर सभी जेठानियाँ नत मस्तक हो गयीं, पानी-पानी हो गयीं और पुनः सभी प्रेमपूर्वक मिलकर घर के कार्य करने लगीं। यह देख दमयंती बहुत संतुष्ट होती है।

विनयप्रभा अब सबसे कहती है मेरी आप सभी से एक प्रार्थना है आप सभी प्रातःकाल सबसे पहले मंदिर जाया करें भगवान की पूजा अर्चना करें। पुनः निवेदन करती है हम सभी भोजन करने से पहले किसी त्यागीव्रती को भोजन कराऐंगे तब भोजन ग्रहण करेंगे घर के लोग नगर में देखते हैं कि कोई त्यागी व्रती संत महात्मा हों तो उन्हें सबसे पहले भोजन कराते हैं तब सभी भोजन करते हैं। वह पुनः निवेदन करती है कि सभी विश्राम करने से पहले भले ही 24 मिनट एक घड़ी के लिये ही सही शास्त्रों का स्वाध्याय करेंगे। वे कहानियाँ जो शिक्षाप्रद होतीं वह उन्हें पढ़कर सभी को सुनाती है। जब सब कार्य से निवृत्त हो जाते मिलकर भगवान की आरती करते। वह रात्रि में सबसे कहती है-देखो ! मैं सबसे छोटी हूँ न मेरे कार्य को कोई छीनना नहीं, मैं सबकी सेवा करुँगी चाहे 2-2 पल के लिये ही सही मैं सबके पैर दबाऊँगी। इसे देखकर अन्य छोटी-बड़ी देवरानी भी अपनी जेठानी के पैर दबाती हैं। घर का माहौल तो स्वर्ग से भी अच्छा बन जाता है। आनंद ही आनंद छा जाता है।

शिक्षा:

इस प्रकार 'छोटी बहू' विनयप्रभा ने अपने नरक जैसे घर को भी स्वर्ग बना दिया। आज ऐसी कन्याओं की आवश्यकता है। आज लड़के वाले लड़की से शादी के समय धन न मांगे वह धन तुम्हारे बेटे को व्यसनी बना सकता है किन्तु संस्कारी कन्या लेकर आओगे तो वही बेटा तुम्हारी सेवा करेगा, तुम्हारे घर में सुख-शांति की लहर आ जायेगी, इसलिये कन्या को चेहरे से सुंदर नहीं देखना सुसंस्कारवान् देखना। उसके पिता से कहना-मैं बहुरानी नहीं बेटी लेकर जाऊँगा। जो ऐसी कन्या लेते हैं उनके घर में नि:संदेह सुख शांति की वृद्धि होती है।

संतों का कर्त्तव्य

जब तक पर पदार्थों से सुख प्राप्ति की धारणा मन में विद्यमान है, तब तक उस व्यक्ति को पर पदार्थों के संग्रह से कोई नहीं रोक सकता। यदि उसे बाहरी पदार्थ संग्रह हेतु नहीं भी मिलें, तब भी वह अपने अंतरंग में उन पदार्थों का ढेर लगायेगा जिन पदार्थों की प्राप्ति से सुख की धारणा बना चुका है। अत: आज परिग्रह के त्याग की आवश्यकता कम है, उसे सद्ज्ञान, सद्बुद्धि की ज्यादा आवश्यकता है, उस मोही प्राणी की मिथ्या धारणा को तोड़ना बहुत आवश्यक है। आज संतों का अनिवार्य कर्तव्य यही है कि वह भव्य जीवों के लिए आत्म कल्याण का उपदेश दें।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज

मीठे प्रवचन से

१४

पद का चयन योग्यता से

शौर्यपुर देश लाखों वर्ष पूर्व से ही प्रसिद्ध देश रहा है, यदुवंशियों का साम्राज्य हजारों वर्ष ही नहीं लाखों वर्षों तक रहा। शौर्यपुर के राजा कभी अंधकवृष्टि भोजकवृष्टि थे, फिर महाराज शूरसेन बने, शूरसेन महाराज बहुत पराक्रमी राजा थे। यदुवंश में उस शौरीपुर नगर में जैनों के 22वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ का जन्म हुआ था। उसी यदुवंश में 9वें नारायण श्री कृष्ण का जन्म हुआ। इस शौर्यपुर देश में उत्तर मथुरा नाम की नगरी थी भले ही उसको उत्तर मथुरा कहते थे पर वास्तव में वह एक अनुत्तर नगरी थी, दक्षिण भारत में भी दक्षिण मथुरा नाम की नगरी थी जो वर्तमान काल में मदुरई के नाम से विख्यात है। उत्तर मथुरा बहुत सम्पन्न था, शौर्यपुर से मथुरा तक की सीमायें कुरुजांगल और इन्द्रप्रस्थ तक जाती थीं उधर चेदी, वत्स, दशार्ण, कांपिल्य देश तक जाती इतना भू खण्ड पहले शौर्यपुर देश में आता था।

जिस समय का ये कथानक है उस समय उत्तर मथुरा नगरी में महाराज अरिदमन राज्य करते थे। ये शत्रुओं का दमन करने के लिये उसी तरह से थे जैसे हाथियों को सिंह परास्त करता है, सूर्य अंधकार को परास्त करता है, धर्म पाप को नष्ट करता है, इसलिये अरिदमन का ये नाम सफल और सार्थक था। उसकी हृदय वल्लभा रानी लक्ष्मी मती थी, ऐसा लगता था साक्षात् लक्ष्मी की मूर्ति हो। महाराज अरिदमन अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुये प्रजा का भली भाँति पालन पोषण कर रहे थे। इनके एक पुत्र था जिसका नाम था पद्मरथ। वह पद्मरथ भी अपने माता-पिता के संस्कारों व गुणों के अनुरूप शिष्टाचारी विनम्र, सदाचारी एवं प्रजा वत्सल था। इसकी अहिंसा धर्म में बहुत गहरी आस्था थी। इस देश में प्राय:कर के कोई भी व्यक्ति शिकार नहीं खेलता था, उस समय जीव वध नहीं किया जाता था। यदि किसी ने जीववध किया तो वह दण्ड का पात्र होता था। 'सुरा' (शराब) उनके राज्य में नहीं चलती थी, सभी मधुर रसपान करते थे।

इसी नगर में एक अर्हदास सेठ रहता था, वह अरिहंत का दास था। अरिहंत वे कहलाते हैं जिन्होंने अपने चार घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है जो अठारह दोषों से रहित होते हैं, वीतरागी होते हैं। वह अर्हदास उनके चरणों का भक्त था, जैसे भ्रमर कमल के वशीभूत रहते हैं ऐसे ही अर्हदास अरिहंत भगवान के चरणों का दास बनकर के चरण चंचरीक बनकर के रहता था, इसकी पत्नी जिनदत्ता थी, उसमें सम्पूर्ण जिनत्व के संस्कार थे। जिनधर्म की यह महिला आदर्श प्रतीक थी, इनके चार पुत्र थे जिनके नाम क्रमशः-गुणमाल, जयमाल, जगमाल और सुकुमाल थे।

सेठ अर्हदास और सेठानी जिनदत्ता ने संस्कारवान्, सुंदर, गुणज्ञ, कुशल व धर्मज्ञ चार कन्याओं को अपने पुत्रों के लिये पसंद किया। क्रमशः गुणमाल के लिये गुणमाला, जयमाल के लिये जयमाला, जगमाल के लिये अक्षमाला और सुकुमाल के लिये रत्नमाला, ऐसा लगता था कि ये वास्तव में अपने नाम को सफल और सार्थक कर रहीं हैं। श्रेष्ठी अर्हदास अपने घर में सदैव प्रेम और वात्सल्य का व्यवहार बनाकर के रखता था इसलिये चारों बेटों में और पुत्रवधुओं में अपार वात्सल्य और स्नेह था। उनमें आपस में कभी तेज शब्दों में भी वार्तालाप नहीं होता था, तू-तू मैं-मैं झगड़ा करना तो बहुत दूर की बात है। अर्हदास अपने आपको बहुत बड़ा पुण्यात्मा मानता था। वह पुण्यात्मा था भी क्योंकि प्रातःकाल सबसे पहले वह भगवान की पूजा करता, साधुसंतों को आहार देता, समीचीन शास्त्रों को पढ़कर स्वाध्याय करता, संयम का पालन करता, पर्वों के दिनों में व्रत उपवास करता, तीनों कालों में सामायिक करता, अरे इतने कार्य करने वाला पुण्यात्मा नहीं तो और कौन होगा। जिनदत्ता सेठानी वह तो मानो सेठजी से भी चार कदम आगे थी, उनको तो कभी धर्म कार्य से फुरसत ही नहीं मिलती थी, इसलिये चारों बेटे भी संस्कारवान् थे। वह भी बिना भजन किये कभी भोजन नहीं करते थे। इनके घर का खान-पान बहुत शुद्ध था सेठ-सेठानी अपने पुत्र पुत्रवधुओं को देखकर बहुत संतोष को

प्राप्त होते थे। किन्तु अब ये वृद्ध हो चले थे इसलिये उन्होंने सोचा कि किस बहू को कौन सा काम सौंपा जाये। उनकी परीक्षा लेने की भावना से सेठ जी ने चारों बहुओं को बुलाया और कहा-''बेटा मैं तुम्हें ये चावल के दाने दे रहा हूँ पाँच-पाँच दाने चारों बहुओं को दे दिये, जब मैं आपसे माँगू तब आप मुझे दुबारा दे देना''। यह कहकर चारों बहुओं ने पाँच-पाँच चावल के दाने ले लिये।

पहली-बहु गुणमाला ने देखा-ये पाँच चावल के दाने हैं मैं इनमें कहाँ अपना मन लगाऊँगी मुझे और भी कार्यों से फुरसत नहीं है अरे! अपने भण्डार में तो चावलों के बोरे के बोरे रखे हैं इन 5 चावलों में

कोई विशेष बात थोड़े ही है। जब पिता जी मांगेंगे तब भण्डारगृह से निकाल कर उन्हें दे दूंगी और वे चावल उसने फेंक दिये।

दूसरी बहु जयमाला ने सोचा-पिता जी ने 5 चावल दिये हैं ये विशिष्ट दाने होंगे, इससे उत्तम दाने कहाँ मिल सकते हैं पहली बार अपने हाथों से दिये हैं। उसने उन्हें प्रसाद मानकर के वे 5 चावल के दाने खा लिये। पुनः तीसरी पुत्रवधु ने सोचा-पिता जी के इन 5 चावलों में जरूर कोई रहस्य होगा, उन्होंने कहा है जब मैं माँगू तब दे देना, तो अक्षमाला ने उन चावलों की पोटली बनायी और गांठ लगाकर डिब्बी में बंद कर तिजोरी में रख दिया। चौथी पुत्रवधु सोचती है-पिताजी ने पाँच चावल के दाने दिये है वे इनके माध्यम से हमारी परीक्षा लेना चाहते हैं हमारी बुद्धि की, कुशलता की, गंभीरता की, धैर्य की और प्रतिभा की, इसलिये पिता जी जो हमसे चाहते हैं हम उनके समक्ष वही व्यवहार और रूप प्रकट करें।

वे पाँच दाने रत्नमाला ने घर के पीछे के खेत में किसान द्वारा बोने के लिए दे दिये। उनको बोने से वहाँ बहुत से चावल उग आये। उसने किसान से कह दिया इनको फिर बो दो, इससे दूसरी साल भी बहुत सारे चावल आये, इस तरह से तीसरी चौथी साल पुनः पुनः वह चावलों को बोती गयी 5 वर्ष के बाद अर्हदास जी ने चारों पुत्रवधुओं को बुलाया और कहाँ-बेटा तुम्हें कुछ याद है मैंने कुछ समय पहले तुम्हें चावल के कुछ दाने दिये थे। जी पिताजी ! तो बेटा गुणमाला-वे पाँच दाने कहा हैं। वह बोली-मैंने सोचा अपने भण्डार गृह भरे पड़े हैं चावल आप मांगेंगे तो यहाँ से दे दूँगी वे पाँच दाने मुझे कचरे की तरह लगे सो मैंने बाहर उठा कर फेंक दिये। चलो बेटा कोई बात नहीं। दूसरी पुत्र वधु को बुलाया कहा-बेटा मैंने पाँच चावल के दाने दिये थे ना। वह बोली हाँ पिताजी आपके हाथ से मुझे जीवन में पहली बार 5 दाने मिले मैं उन चावल के दानों को ऐसे कैसे फेंक सकती थी, मैंने ऐसी मूर्खता नहीं की। बेटा-तो फिर तुमने क्या किया? पिताजी

–मैंने तो उसे आपके द्वारा प्रदत्त प्रसाद मानकर ग्रहण कर लिया। मैंने तो उसे तब ही खा लिया था। अच्छा बेटा कोई बात नहीं।

पुनः तीसरी पुत्र वधु को बुलाया–वे पाँच चावल के दाने मैंने दिये थे, बोली–हाँ पिताजी मुझे याद है। आपने कहा था कि मैं माँग लूँगा, मैंने बहुत ही सहेज कर रखे हैं। ये लीजिये पिताजी और डिब्बा हाथ में दे दिया। पिता जी ने खोला तो देखा डिब्बे में डिब्बा, डिब्बे में डिब्बी, डिब्बी में पोटली, पोटली में से गांठ निकली और उस गांठ में से 5 चावल के दाने निकले। चौथी पुत्रवधु! को बुलाया–और कहा कहाँ हैं वे दाने बेटा। वह बोली पिताजी थोड़ा समय लगेगा, वैसे तो वे आ रहे हैं पिताजी बोले मतलब ? इतने में ही वह किसान आ गया और बोला–छोटी मालकिन आपके आदेश का पालन हुआ गाड़ियाँ बाहर खड़ी हैं। रत्नमाला ने कहा–पिताश्री आपने जो चावल के 5 दाने दिये थे वे बाहर द्वार पर हैं मैं अंदर नहीं ला सकती आप ही बाहर देख लें सेठ ने देखा–तो कई गाड़ियों में चावल के बहुत सारे बोरे रखे थे। पिताजी ने कहा–बेटा ये क्या? वह बोली पिताजी जो आपने मुझे चावल के पाँच दाने दिये थे वे मैंने खेत में उगा दिये, जिससे बहुत सारे चावल उग आये मैंने दुबारा उगा दिये तो पुनः बहुत सारे आ गये ऐसे करके मैंने 3–4 बार बोये तो इससे इतनी सारी गाड़ियाँ और बोरे भरकर चावल हो गये हैं।

पिता ने कहा–वाह–बेटा वाह ! ठीक है–आज से इस घर में सफाई का जो काम है वह बड़ी पुत्र वधु करेगी क्योंकि इसे गंदगी पसंद नहीं, दूसरी पुत्रवधु भोजन व्यवस्था को संभालेगी क्योंकि आप हर वस्तु में अमृत का स्वाद लेती हैं। इसलिये सभी के लिये अमृतनुमा भोजन बनाकर संतुष्ट कर सकती हैं। अतः आपको भोजन शाला का कार्य दिया जाता है। तीसरी पुत्रवधु से कहा–जैसे आत्मा की रक्षा की जाती है वैसे ही आपने इन पाँच दानों की रक्षा की। आप सामान की सुरक्षा बहुत भली प्रकार से करती हैं अतः घर का पूरा कोष, जितना भी धन है उसे आप संभालेंगी। चौथी पुत्रवधु से कहा–बेटा रत्नमाला

नि:संदेह तुम ही योग्य हो घर संचालन करने में, ये चाबियाँ संभालो और तुम्हें राज्य श्रेष्ठी पद का निर्वहन करना है तुम बहुत योग्य हो।

इसी तरह चारों पुत्रों को बुलाया उनकी भी परीक्षा ली और गुणमाल बेटे को संधि नीति का ज्ञान अच्छा जानकर सबसे मित्रता का ज्ञाता जानकर जहाँ भी मैत्री करना है, मित्रों की वृद्धि करना है उसका कार्य गुणमाल को सौंपा। जयमाल को अध्ययन का कार्य सौंपा, जगमाल को घर की सुव्यवस्था के लिये नियुक्त किया जिससे घर की धर्म की गुणों की वृद्धि हो। चौथे बेटे को पुन: गृह संचालन का कार्य दिया गया किस प्रकार अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखना है, न्याय नीति से संचालन करना है।

इस प्रकार से अर्हदास ने सभी को यथायोग्य कार्यभार सौंप दिये। और स्वयं जंगल में किसी यथाजात दिगम्बर साधु के चरणों में जाकर उनकी सेवा का संकल्प लिया, स्वयं दीक्षा ली और आत्मा का कल्याण किया। उनकी पत्नी जिनदत्ता ने भी सर्वश्री आर्यिका के पास जाकर दीक्षा लेकर अपनी आत्मा का कल्याण किया।

शिक्षा:

घर का वातावरण ऐसा ही होना चाहिये, जो जिस कार्य को करने में योग्य है उसे वही कार्य सौंपना चाहिये और उसको भी वही कार्य करना चाहिये जो वह कर सकता है। जो कार्य नहीं कर सकता है वह तो कार्य लेने का साहस भी न करे उसे सौंपे भी नहीं, जो बेटा किसानी जानता है उससे किसानी ही करवायें वकालत नहीं, जो वकालत की पात्रता रखता हो उससे किसानी न करवायें। कहने का आशय है जो जिस कार्य में सफल हो सकता है वही कार्य उससे करवाएँ अयोग्य को कार्य सौंपने से वह उसमें असफल हो जायेगा। इसलिये घर के बुद्धिमान व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि घर को स्वर्ग बनाने का पुरुषार्थ करे जिससे सुख शांति की स्थापना हो सके।

१५

जो चाहो सो पाओ

इस भरत क्षेत्र में सुरम्य नाम का एक उत्तम देश है, सुरम्य शब्द ही अपने आप में अर्थ व्यक्त कर रहा है-''अच्छी तरह से रमण करने के योग्य।'' आर्य पुरुषों से समन्वित, धर्मात्मा जनों की स्थली, तपस्वी साधु-संतों का विचरण क्षेत्र एवं यम-नियम व्रत संयम का पालन करने वाले साधर्मी गृहस्थ धर्मात्माओं का वह कर्म क्षेत्र, भव्यजीवों के द्वारा रमणीय था। उस सुरम्य देश में एक पोदनपुर नाम का नगर था, यह वही पोदनपुर हो सकता है जिसका राज्य प्रथम तीर्थंकर आदि ब्रह्मा भगवान आदिनाथ के पुत्र बाहुबली ने संभाला था। यह पोदनपुर पहले बहुत सम्पन्न था क्योंकि इस पोदनपुर में प्रथम कामदेव भगवान बाहुबली जिनकी 1 हजार रानियाँ थी, उन्होंने अपने राज्य का बड़ी निष्ठा और न्याय नीति से पालन किया था।

इसी सुरम्य देश में महाराज युगबाहु राज्य कर रहे थे, उस समय युगबाहु वास्तव में ही एक पराक्रमी न्यायप्रिय, सत्यनिष्ठ धर्मात्मा प्रजावत्सल राजा थे, आस-पास के देशों में भी ऐसा राजा नहीं था। महाराज युगबाहु जितने स्वाभाविक गुणों के धनी थे उसी प्रकार उन्हें गंगा और यमुना की धारा की तरह से दो जीवन साथियों का सहारा मिला, पहली रानी का नाम था सौदामिनी, दूसरी रानी का नाम था मृगावती। सौदामिनी अत्यंत सुंदर थी गुणज्ञ थी किन्तु इसके कोई संतान नहीं थी। मृगावती रानी भी कम सुंदर और गुणज्ञ नहीं थी, इनके संतान भी थी, हो सकता है महाराज युगबाहु ने मृगावती को तब स्वीकार किया हो जब सौदामिनी वंश की वृद्धि करने में असमर्थ रही हो। खैर मृगावती ने एक पुत्री मृगनयनी को जन्म दिया और एक पुत्र शशांक को जन्म दिया। तृतीय बार में मृगांकी नाम की एक पुत्री को और जन्म दिया। जो मृगनयनी नाम की प्रथम पुत्री थी वह बड़ी माँ सौदामिनी के पास रहती थी। सौदामिनी उसके माध्यम से अपना मन

बहलाती थी। मृगांकी तथा शशांक अपनी माँ के पास रहते। शशांक बचपन से ही धार्मिक संस्कारों से सहित था इसलिये जब भी वन विहार के लिये जाता तो वनभ्रमण तब तक करता रहता जब तक किसी साधु संत के दर्शन न हो जायें। यह बचपन से ही सेवा भावी था, गरीबों की सेवा करता, परोपकार करता, इसका हृदय करुणा भाव से भीगा हुआ था।

एक बार जंगल में किसी साधु के दर्शन करने से शशांक पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा, अब उसने नियम ही बना लिया प्रतिदिन उन महात्मा के पास जाने का और उनकी सेवा करने का। वे महात्मा भी यथानाम तथा गुण के धारक थे, उनका नाम था 'दयामित्र'। वे बड़े दीर्घ तपस्वी थे उनकी तपस्या से प्रभावित होकर लोग उन्हें स्वर्ण मुद्रा रत्न आदि चढ़ाते थे, किन्तु महात्मा जी कोई रत्न मुहर छूते भी नहीं थे उनके सेवक शिष्यगण चेले उसे कहीं डालते जाते जैसे कोई सामान्य वस्तु की तरह से पुनः वह धन गरीब व्यक्तियों में बँटवा दिया जाता था। महर्षि दयामित्र जब समाधि की साधना कर रहे थे तब उन्होंने सोचा मेरे दो निकटवर्ती सेवक हैं शशांक और द्वितीय सुकृत नाम का ग्वाला। सुकृत ग्वाला को उसकी माँ गोपिका व पिता गोपीनाथ ने सुसंस्कार दिए। सुकृत सेवा कार्य में संलग्न रहता था इसमें उसकी सहभागी बनती थी उसकी पत्नी राधा।

सुकृत और शशांक दोनों ने महात्मा की बहुत सेवा की जब महात्मा समाधि का संकल्प लेने जा रहे थे तब दोनों सेवकों को बुलाया और कहा-देखो मैं अब समाधि को स्वीकार करता हूँ तुम दोनों ने मेरी बहुत सेवा की है। अतः मेरे पास जो अभी परिग्रह के रूप में धन इकट्ठा हुआ है उससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है आशीर्वाद स्वरूप उसे आप ले लेना। राजकुमार ने कहा-महात्मन्! आपका आशीर्वाद ही पर्याप्त है दोनों ने आशीर्वाद लिया और महात्मा समाधिस्थ हो गये। उनके पश्चात् दो कमरे थे दोनों कमरों को खोला

गया। एक कमरा स्वर्ण आभूषणों और रत्नों से भरा था तो दूसरे कमरे में कुछ लकड़ियाँ और खड़ाऊँ रखी थीं। सुकृत और शशांक दोनों बैठे थे, सुकृत सोचने लगा कहीं ये राजकुमार सोने या रत्नों के कमरों को

लेने की ना कह दे और मुझे लकड़ियाँ और खड़ाऊँ न दे दे, मैं इनका क्या करूँगा, मुझे तो किसी प्रकार से रत्नों का कोठा मिल जाये। शशांक सोच रहा था कि सुकृत कहीं ये न कह दे कि मैं इन स्वर्णाभूषणों का क्या करूँगा मुझे तो ये लकड़ी चाहिये गाय बैल

हांकने के लिये। दोनों के मन में डर था, फिर भी शशांक ने साहस करके कहा सुकृत तुम अपने आप को मुझसे छोटा मानते हो, तो बड़े को भी उदारता दिखाने का अपना कर्त्तव्य करना चाहिये। मैं पहले तुम्हें इच्छा रूप से मांगने का वर देता हूँ कि तुम दोनों में से किसको पसंद करना चाहते हो, सुकृत तो मानो खुशी के मारे पागल हो गया। उसने सोचा भी नहीं था कि मुझे इतना सारा भी धन मिल सकता है और राजकुमार मुझे पहले माँगने को कह सकता है।

सुकृत ने कहा-मैं तो कृतकृत्य हो गया ठीक है तुम यदि कहते हो कि दोनों कमरों में से एक पसंद करो तो मैं स्वर्ण वाला कमरा लूँगा। लकड़ियों से मेरा क्या प्रयोजन, खड़ाऊँ से मैं क्या करुँगा। शशांक ने कहा-तुम अपनी जितनी पोटली बांधकर ले जाना चाहो ले जाओ, जो तुम्हारे काम का न हो उसे छोड़ देना, सुकृत ने सोने चांदी के आभूषणों की पोटली बांध ली जितना बांध सकता था उतना बांध लिया, रत्नों के बारे में वह जानता ही नहीं था कि क्या होते हैं चमकीले पत्थर समझकर छोड़ दिये और अपनी पोटली लेकर दौड़ता चला जा रहा है, कहीं ऐसा न हो कि शशांक मुझे पकड़ ले उसका भाव नहीं बदल जाये कहीं वो मुझे पकड़ने के लिये अपने सैनिकों को न भेज दे।

शशांक शांति की श्वाँस लेकर बैठा है, उसने देखा वहाँ लकड़ियों का खटोला है, वह खड़ाऊँ पहनकर खटोले पर बैठ गया। और जिन रत्नों को सुकृत पत्थर समझकर छोड़ गया था उन्हें हाथों में ले लिया, वह जिस खटोले पर बैठा था वह उड़न खटोला था, विमान था, शशांक उसमें बैठकर तीर्थक्षेत्रों की यात्रा करने जाता है, उन रत्नों को जिनालय में भगवान के सामने चढ़ाता है और बहुत संतुष्ट होकर अपने राज्य में पुनः लौट आता है।

साधु की सेवा से क्या नहीं प्राप्त हो सकता है सब कुछ प्राप्त हो सकता है किन्तु अल्पज्ञ व्यक्ति साधु सेवा से सोना-चाँदी जैसी

वस्तु मांगते हैं, या सांसारिक वैभव मांगते हैं किन्तु शशांक की तरह मांगने वाली बुद्धि हर एक के पास नहीं होती। जो व्यक्ति चाहे तो अतिथि सेवा के माध्यम से जैसे शशांक ने उड़न खटोला ले लिया था, ऐसे ही आकाशगामिनी विद्या यानि मोक्ष में गमन करने वाली विद्या की भी प्राप्ति की जा सकती है। अतिथि सेवा केवल लौकिक वैभव देने वाली ही नहीं होती है, केवल इन्द्रिय सुख, आरोग्यता, सुन्दरता ही नहीं देती अपितु वह अभ्युदय सुख को देने वाली होती है। अपवर्ग स्वर्ग, मोक्ष को देने वाली होती है, इसलिये जो प्रबुद्ध वर्ग है वह साधुओं की सेवा करके, संसार का वैभव न मांगे तब भी वह तो मिलता ही मिलता है और बाद में मोक्ष का वैभव मिलता है।

शिक्षाः

आप लोग नित्य ही साधु सेवा करें और अपने कर्त्तव्यों का निष्ठा से पालन करें। कहा जाता है ''सेवा से मिलती है मेवा'' यही इस भव में पर भव में सुख शांति का, कल्याण का मार्ग है।

निर्वाह नहीं निर्माण व निर्वाण भी

जीवन निर्वाह तो संसार के समस्त प्राणी करते ही हैं चाहे वे लापरवाह हों या सर्वचाह, चाहे वे बेपरवाह हों या शिवराही। आज आवश्यकता मात्र निर्वाह की नहीं, जीवन निर्माण की भी है क्योंकि जीवन के समीचीन निर्माण के बिना कर्मों से निर्वाण होना असंभव है, अतः निर्माण जरूरी है। मनुष्य के जीवन का समीचीन निर्माण करने में सक्षम व समर्थ है, वह भी सद्गुरुओं के सानिध्य से, सेवा-भक्ति, दान-उपासना से, आगम ग्रन्थों के स्वाध्याय व सच्चे देव की पूजा, अर्चना, स्तुति, वंदना से, अहिंसामयी धर्म की अनुपालना, भावना, उपासना व साधना करके।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज

मीठे प्रवचन से

१६

सज्जन की दुर्जनता

भरत क्षेत्र नानादेशों से समन्वित एक ऐसा आध्यात्मिक देश रहा है जिस कारण ये भारत देश विश्व गुरु का गौरव और सम्मान प्राप्त करता आया है। इसी भारत देश में एक अवन्ति नाम का मनोहर देश था, जिसकी राजधानी उज्जैनी नगरी थी। वहाँ पर राजा महापद्म न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता था, इसकी रानी का नाम मनोहरा था, जो नि:संदेह महाराज के मन का हरण करने वाली थी। इस राजा के मनोरमा, मनोदया नाम की दो पुत्रियाँ और ललितांग नाम का सुसंस्कार वान् व सुयोग्य पुत्र था। ललितांग नाम शायद इसलिये रखा क्योंकि उसका शरीर अत्यंत सुंदर था। इतना ही नहीं उसके अंदर माता-पिता के सुसंस्कार अच्छी तरह से भरे पड़े थे, वह श्रद्धावान् था, दयालु था, परोपकारी था, अतिथि सेवा में निरन्तर अग्रशील रहता था और सभी के साथ मैत्री का व्यवहार करता था।

ललितांग कुमार बचपन से ही सबको प्रिय था, बड़े होने पर संस्कार और बढ़ते चले गये, वह खूब दान देता था। राजा ने उसे समझाया बेटा इतना दान देना उचित नहीं है हमारा राजकोष पूरा खाली हो जायेगा, तुम्हें राजगद्दी संभालनी है किन्तु व कहता था पिताजी पुण्य करने से यथेष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है। आपने और माँ ने जो संस्कार दिये हैं उनके फलस्वरूप मैं अपने मन को रोक नहीं पाता जो कोई भी दु:खी व्यक्ति दिखाई देता है, जिसे धन की आवश्यकता होती है उसे धन देकर ही मेरा मन संतुष्ट होता है। पिताजी ने कई बार समझाया किन्तु ललितांग नहीं माना आखिर में हुआ ये कि राजा ने घोषणा कर दी कि तुम्हें मेरे राज्य में रहने का कोई अधिकार ही नहीं है क्योंकि तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन करते हो। वह माँ के चरण छूकर जाने लगता है, माँ आँखों में आंसू भरते

हुए कहती है बेटा मैं तुम्हारे पिताजी के आदेश का उल्लंघन नहीं कर सकती किन्तु मैं तुम्हें ये रत्न देती हूँ जिसके माध्यम से आगे तुम अपना भरण पोषण कर सकते हो। अगले दिन प्रात:काल राजकीय पोशाक पहना कर माँ ने उसे विदा किया।

ललितांग कुमार यह सोचता हुआ कि मेरा कोई पूर्व तीव्र पाप कर्म का उदय रहा होगा, इस भव में कुछ पुण्य कार्य किया इससे कुछ पाप कट गया अन्यथा न जाने कौन सा बड़ा दण्ड मिलता, वह कर्म सिद्धान्त का चिन्तन करता हुआ चला जा रहा है, तभी मार्ग में राजकुमार जैसा ही एक युवा साथी दिखायी दिया। उसे देखकर उसने पूछा-आप कहाँ जा रहे हैं, उसने कहा-जहाँ आप जाते हैं। पूछा आप का क्या नाम है-उसने कहा मेरा नाम 'सज्जन कुमार' है। क्या आप अपना परिचय देंगे ? अवश्य! मैं मालवदेव के कुन्दपुर नगर के राजा क्षेमंकर रानी क्षेमंकरा का पुत्र सज्जनकुमार हूँ मेरी एक बहिन है सुशीला। मैं बचपन से ही नटखट स्वभाव का रहा। मेरे पिता ने मुझसे तंग आकर के मुझे देश से बाहर निकाल दिया। अब तुम अपने बारे में बताओ।

तभी ललितांग कुमार ने बताया कि-मैं अवन्तिदेश की उज्जैनी नगरी के राजा महापद्म और रानी मनोहरा का पुत्र ललितांग कुमार हूँ। मनोरमा और मनोदया मेरी दो बहिने हैं। मैं अच्छे संस्कारों से युक्त था। मैं दान देता, उपकार करता, पूजा-पाठ में संलग्न रहता पिता को ये संस्कार अच्छे नहीं लगे कि तू ज्यादा परोपकार करता है तुझे मेरे राज्य में रहने का अधिकार नहीं इसलिये उन्होंने मुझे अपने राज्य से वंचित कर दिया। दोनों रास्ते में मित्रता का व्यवहार करते हुये अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर चल दिये। तभी मार्ग में सज्जन ललितांग से कहता है-भाई तुम कुछ ज्यादा परोपकारी बन गये, इस काल में इतना ज्यादा परोपकारी बनना भी ठीक नहीं है। ललितांग बोला क्यों? वो इसलिये देखो ! उपकारी होने के कारण तुम्हें देश निकाला ही मिल

गया। मैं बचपन से ही मौजमस्ती करता रहा खूब खाया-पीया, जिसको पीटने का मन किया उसे पीटा, अब शांति से देश के बाहर आ गया, जब तक मेरे पास धन है तब तक मौज मस्ती करूँगा बाद में पुनः राज्य में पहुँच जाऊँगा।

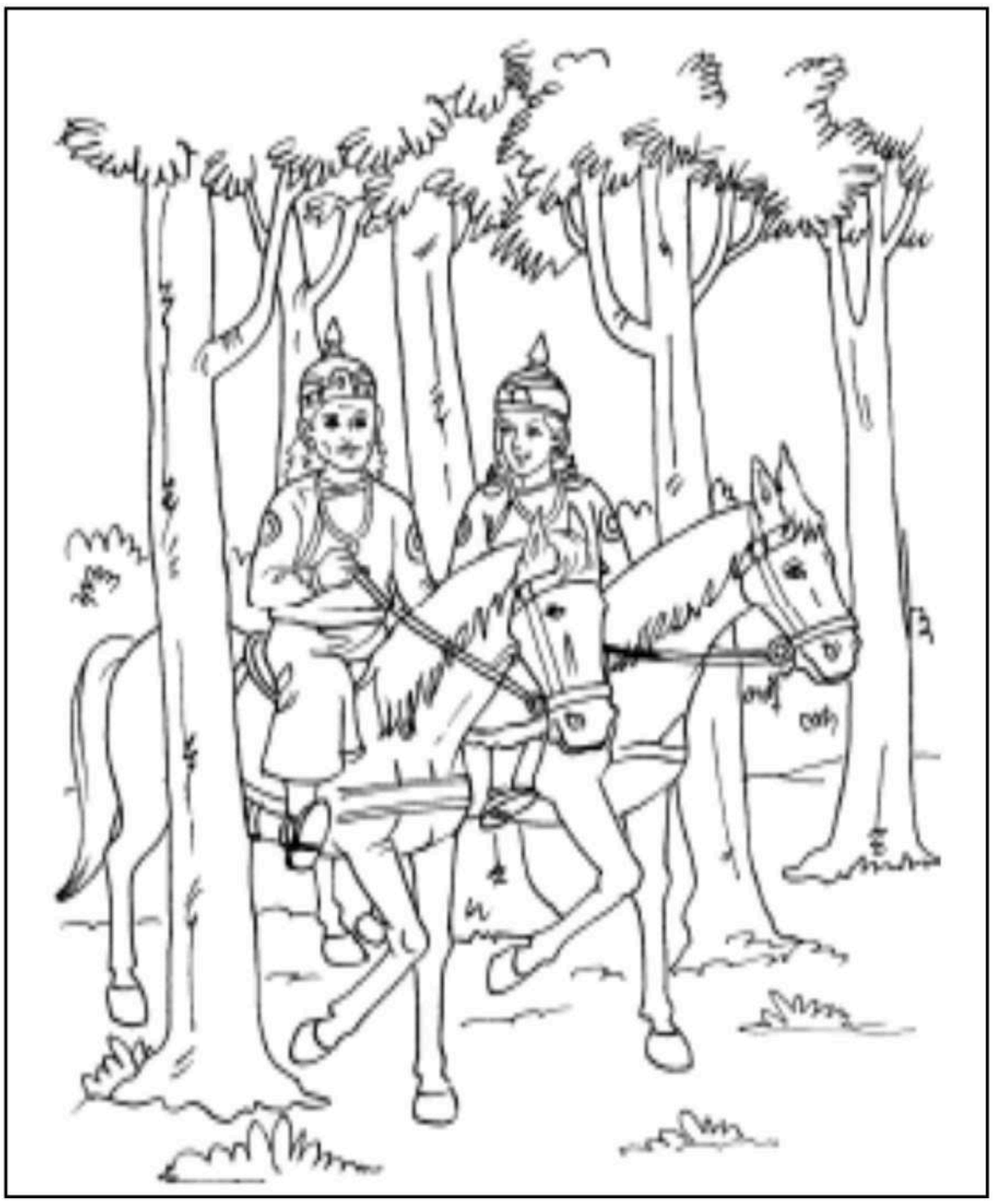

ललितांग ने कहा-देख सज्जन अच्छे का परिणाम सदैव अच्छा निकलता है, बुरे का बुरा निकलता है। सज्जन ने कहा-ऐसा नहीं है वह जमाना गया जब ऐसा होता था। ललितांग कहता है-जमाना कहीं

नहीं गया कर्म सिद्धान्त कभी नहीं बदलता। अग्नि सदा गर्म ही रहती है और आगे भी गर्म रहेगी, पानी सदैव ऊपर से नीचे की ओर बहता है, सूर्य पूर्व से ही उगता है सब सिद्धान्त तो ज्यों के त्यों हैं। सिद्धान्त कैसे बदल सकता है इसलिये अच्छा काम करो। सज्जन कहता है नहीं मैं तो बुरा ही काम करूँगा, ललितांग कहता है नहीं ऐसा नहीं हो सकता, तो सज्जन कुमार कहता है यदि ऐसा है तो शर्त लगा लो, ललितांग ने कहा-मैं शर्त नहीं लगाता। सज्जन ने कहा शर्त लगानी पड़ेगी मेरी बात सही है-और देख यदि तू शर्त हार जाता है तो तेरा घोड़ा तेरी रत्नों की पोटली मैं ले लूँगा, यदि मैं हार गया तो मैं अपना घोड़ा और रत्नों की पोटली तुझे दे दूँगा। ललितांग चुप रहा ''मौनं सम्मति लक्षणं'' ये मानकर शर्त स्वीकृत हुयी।

जैसे ही आगे बढ़े एक गाँव में दो व्यक्ति झगड़ा कर रहे थे। सज्जन ने पूछा-क्या बात हो गयी-एक बोला मैंने इसका उपकार किया-अपने मकान के आगे जगह दी ठहरने के लिये और किराये के रूप में मैं इससे कुछ पैसे लेता था बाद में वह भी छोड़ दिया। ये वर्षों से रह रहा है अब छोड़ता ही नहीं और उल्टा यह कह दिया कि खाली करवाओगे तो मुझे पैसे दो अन्यथा मैं तुम्हारे मकान पर कब्जा कर लूँगा। देखो! क्या जमाना है मैंने इस पर उपकार किया, इसके बावजूद भी यह जिस जगह रहता है वहाँ भी कब्जा करना चाहता है और जिस मकान में मैं रहता हूँ वहाँ भी कब्जा करना चाहता है। भलाई का जमाना नहीं है बुराई करके रहो वही सही रहता है।

सज्जन ललितांग से कहता है-देख लिया जमाना भलाई का नहीं बुराई का है अब लाओ-अपना घोड़ा और रत्नों की पोटली। बेचारा वह पैदल चलने लगा। पुनः सज्जन कहता है अभी भी मान जा मेरी बात-पर ललितांग कहता है नहीं अच्छाई का फल इस भव में भी अच्छा होगा और परभव में भी मुझे स्वर्ग आदि की प्राप्ति होगी और यहाँ मेरे पाप कट जायेंगे। सज्जन कहता है। ये तेरा मिथ्या भ्रम है,

ललितांग बोला नहीं, ये मिथ्याभ्रम नहीं है। पुनः सज्जन बोला-नहीं है तो शर्त लगा ले-बुराई का फल इस लोक में और परलोक में सुख मिलेगा और अच्छाई का फल इस लोक और परलोक में दुःख मिलेगा। शर्त में यदि मैं जीत जाता हूँ तो तेरी राजशाही पोशाक उतरवा लूँगा यदि तू जीत जाता है तो तेरा घोड़ा और पोटली वापस कर दूँगा। वह ललितांग चुप रहा पुनः ''मौनं सम्मति लक्षणं'' मान लिया गया।

आगे एक गाँव में पहुँचे वहाँ दो युवा लड़के लड़ रहे थे एक कह रहा था, कुछ नहीं होता धर्म से, मैंने देख लिया सबकी भलाई करके मुझे बुराई ही मिलती है, आज भी मिल रही है आगे भी विश्वास नहीं है कि नरक जाऊँगा की कहाँ। बुरे काम करने वाले सभी स्वर्ग चले जाते हैं। सज्जन ने कहा-भईया ! देख लिया ये क्या कह रहे हैं और ये कहते हुये उसके कपड़े उतरवा लिये।

पुनः सज्जन ललितांग को समझाता है कि अभी भी देर नहीं हुई कुछ नहीं बिगड़ा मेरी बात मान ले, कह दे कि मैंने जो कुछ भी किया वो गलत किया, तेरे पिता ने जो किया वो अच्छा किया और मैं जो मौज मस्ती करता हूँ खाता-पीता हूँ वह अच्छा करता हूँ। ललितांग ने कहा-मैं कदापि भी ये बात कह नहीं सकता। सज्जन कुमार ने कहा नहीं मानता तो शर्त लगा ले-यदि तू जीत गया तो मैं तेरी राजशाही पोशाक वापस कर दूँगा और मैं जीत गया तो तेरी दोनों आँखें निकाल लूँगा। वह मौन रहा, इसे भी ''मौनं सम्मति लक्षणं'' मानकर सज्जन कुमार ने बात पक्की कर ली।

आगे जाकर के एक स्थान पर पूछता है जहाँ कुसंगति में पड़े लोग खड़े हुए थे-भाई आज के जमाने में दान-देना, पूजा-पाठ करना ठीक है क्या? वह बोला-अरे ठीक क्यों है? खूब पैसा इकट्ठा करना चाहिये और खूब मौज मस्ती करनी चाहिये। दान देने वाला मूर्ख है। जो अपनी मेहनत से कमाये और दूसरों को दे दे। सज्जन ने कहा-देख ललितांग ! सुन लिया न ललितांग फिर भी चुप रहा। ग्राम के बाहर

निकले तो सज्जन ने एक पेड़ के पत्ते ललितांग की आँख में निचोड़ दिये इससे उसकी आँखों की रोशनी चली गयी और संध्याकाल में वहीं उसे जंगल में छोड़ गया। वह उसके घोड़े, पोटली, पोशाक लेकर चला गया। ललितांग सोचता है-हे भगवान् ये सज्जन नहीं वास्तव में दुर्जन था, पर मैं इसको दोष क्यों दूँ मेरे ही कर्म का उदय है कि मेरे पिता ने मुझे निकाल दिया अच्छा कार्य करने का फल आज नहीं तो कल अच्छा ही मिलेगा, मैं जीवन में बुरा काम नहीं कर सकता, पाप की पुष्टि नहीं कर सकता, पुण्य को हेय नहीं कह सकता।

वह जंगल में ही टटोलते-टटोलते एक घने वृक्ष के नीचे पहुँच जाता है रात्रि विश्राम के लिये, किन्तु नींद नहीं आती। उस वट वृक्ष पर भारुण्ड पक्षी रहता था उसका एक छोटा सा बच्चा था। वह बच्चा पूछता है-दादा! तुम कहाँ गये थे-वह बोला बेटा मैं अंगदेश की चम्पा नगरी में गया था, मैंने वहाँ बहुत चमत्कार देखा। क्या चमत्कार देखा ? बेटा मैंने देखा कि वहाँ का राजा महासेन व रानी वसुन्धरा है जिसकी एक पुत्री है शोभना। वह अंधी है, उस राजा ने घोषणा करवायी थी जो मेरी पुत्री की आँखों में ज्योति डाल देगा उसे मैं आधा राज्य दे दूँगा और अपनी कन्या की शादी कर दूँगा। तो दादा ! फिर तो वह कन्या जिन्दगी भर कुँवारी ही रहेगी। क्यों बेटा ? तो दादा उसकी रोशनी कैसे आयेगी ? तब भारुण्ड पक्षी ने कहा-बेटा कोई व्यक्ति जन्मांध ही क्यों न हो, जिस वृक्ष पर हम बैठे हैं उस पर जो बेल चढ़ रही है इसके पत्तों का रस कोई आँख से लगा ले आँख में कैसा भी जटिल रोग हो उसकी आँखों में रोशनी आ जाती है।

यह सब बात पेड़ के नीचे बैठा ललितांग सुन रहा था, वह टटोलकर बेल के पत्तों को लेता है उन्हें निचोड़कर अपनी आँखों में लगाता है तो ज्योति आ जाती है। उस भारुण्ड पक्षी का छोटा बच्चा कहता है-दादा तुम यहाँ कब से रह रहे हो बोला-बेटा 300 वर्षों से, तो दादा तुमने यहाँ कोई नयी बात देखी-हाँ बेटा देखी इस पेड़ के

सामने नीचे स्वर्ण कलश गढ़े पड़े हैं। उसमें सोना-चाँदी रत्न भरे हैं दो व्यापारी यहाँ आये थे और लड़ते हुये मर गये, किन्तु खजाना अभी तक यहाँ रखा है। अच्छा दादा-तो उस पर किसका अधिकार है ? बेटा जिसका पुण्य है वही प्राप्त करेगा। वह बोला ठीक है दादा, कल मैं भी आपके साथ चम्पानगरी जाऊँगा।

इधर ललितांग सारी बात सुन रहा था, उसने उन पत्तों से अपनी आँखों की रोशनी वापस प्राप्त कर ली, सामने के पेड़ के पास जाता है वहाँ भी उसे धन गढ़ा मिल जाता है। सोचता है यहाँ पड़ा किसी के काम नहीं आ रहा है किसी गरीब को दूँगा तो उसका भी भला हो जायेगा, उसके सभी रुके काम बन जायेंगे इस धन को मैं लोक कल्याण में लगाऊँगा। और धन उठाकर एक वस्त्र में बांध लेता है, स्वयं पेड़ के ऊपर चढ़ जाता है। और प्रात:काल जैसे ही भारुण्ड पक्षी जाने को तैयार होता है वह अपने बच्चे को अपने पंखों में कस कर बिठा लेता है। दूसरी ओर ललितांग बैठ जाता है और अंग देश की चम्पानगरी के विश्रामगृह की छत पर उतर जाता है।

ललितांग एक रत्न निकालकर द्वारपाल को देता है और कहता है इससे वस्त्र लेकर आओ, दूसरे को एक मोहर देकर आभूषण मंगाता है, इस प्रकार तैयार होकर जब वह पहुँचता है तो वहाँ के गरीबों को धन बाँटता है, धन बाँटने से नगरवासी भी उसके पक्ष में हो जाते हैं। यह राजकुमार अवतार लेकर आया है, हमने ऐसा राजकुमार पहली बार देखा है। पूरी जनता उसे राजा के रूप में देखना चाहती थी, दो दिन में ही उसने सबका विश्वास जीत लिया था। तभी वह राजमहल की ओर ठाट-बाट के साथ जाता है और घोषणा करता है कि राजकुमारी के नेत्रों की ज्योति वापस लाने में मैं समर्थ हूँ।

राजदरबार में परदा लगवाया गया राजकुमारी के पिता से आज्ञा लेकर उसने उन पत्तों का रस राजकुमारी की आँखों में डाला इससे रोशनी आ गयी। शोभना खुशी से चिल्ला उठी पिता जी मेरी आँखों की रोशनी आ गयी। बाद में राजा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शोभना

का विवाह ललितांग के साथ कर दिया, इतना ही नहीं आधा राज्य भी दे दिया और वे दोनों वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे।

एक ही दिन बीता था ललितांग रथ पर सवार होकर वनभ्रमण के लिये गया, और बहुत आगे अपने घोड़े को ले गया। वह सुनता है कि कहीं से रोने की कराहने की आवाज आ रही है। वह आवाज के निकट जाता है देखता है एक कुऐं में मनुष्य पड़ा हुआ है। उसने अपने अंगरक्षकों से उसे बाहर निकलवाया देखा तो वह व्यक्ति सज्जन कुमार था। पूछा-तुम्हारी यह दुर्दशा कैसे हुयी तो ज्ञात हुआ-कि चोर डाकूओं ने मेरा सारा धन लूट लिया मुझे यहाँ कुऐं में डाल दिया मैं तो मृत्यु के निकट पहुँच गया। ललितांग अपने अंगरक्षकों द्वारा उसकी चिकित्सा करवाता है। स्वस्थ होने पर सज्जन कुमार पहचान जाता है कि अरे ! ये तो ललितांग है और उससे क्षमा मांगने लगता है। ललितांग उसे अपना मित्र बना लेता है, इतना ही नहीं उसे मंत्री का पद दे देता है।

एक बार महाराज महासेन ने सज्जन कुमार को बुलाया और पूछा-इस राजकुमार ने तुम्हें मंत्री का पद क्यों दे दिया। सज्जन कुमार बोला-ये मेरी दासी का पुत्र था, मैं राजकुमार था, इसको देश से निकाल दिया था, ये यहाँ पर आपका दामाद बन गया है मैं इसका भेद न खोल दूँ इसलिये इसने मुझे मंत्री बना दिया है। यह सुनकर राजा को क्रोध आया इसने मुझे धोका दिया है। महासेन ने कहा-कैसे भी करो इसकी मृत्यु की तैयारी करो।

सज्जन कुमार ललितांग के पास जाता है और कहता है-कि आपको आपके श्वसुर पिताश्री के पास सुरंग के माध्यम से रात के बारह बजे जाना है। शोभना जब सुनती है तो कहती है नहीं जिस सज्जन कुमार ने आपको ठगा, धोखा दिया फिर भी आपने उसे मंत्री बना दिया और अब इसकी बात मानकर रात्रि के 12 बजे पिताजी से मिलने जा रहे हो, नहीं पिताजी को यदि बुलाना हो तो दिन में बुलायें,

राजमार्ग से बुलायें ऐसे आप नहीं जा सकते। शोभना को जिंदगी देने वाला ज्योति देने वाला ललितांग ही था उसके प्रति उसका अगाध समर्पण था, पति उसके लिये पिता से बढ़कर था। उसने कहा आप सज्जन कुमार की बात नहीं मानेंगे आप राजा हैं आप इसे आदेश दो कि सुरंग के मार्ग से वह ही जाये और पूछे कि क्या काम है। सज्जन यह सोचता है कि मैं राजा का विश्वस्त हूँ वे मुझे अपनी योजना अवश्य ही बता देंगे और स्वयं ही सुरंग मार्ग से चला जाता है।

राजा का गन्तव्य तो कुछ और ही था। राजा ने उससे पूर्व ही सुरंग में चार चाण्डाल खड़े कर दिये थे उनके हाथ में तलवारें थीं। राजा के कहे अनुसार जैसे ही वह जाता है चारों ने एक साथ वार किया, सज्जन कुमार के प्राण पखेरु वहीं उड़ गये। प्रातःकाल तक जब सज्जन कुछ समाचार लेकर राजा के पास नहीं पहुँचा तो महासेन राजा को बहुत क्रोध आया। ललितांग को देखा तो पता लगा वह जीवित है मरने वाला सज्जन कुमार था। राजा कुपित हुआ कि ललितांग ने अपना भेद छिपाने के लिये उसे मरवा दिया। दासी पुत्र होकर मेरी पुत्री से विवाह किया है मैं इसे नहीं छोड़ूँगा और युद्ध के लिये अपनी सेना लेकर आ गया। शोभना ने कहा-ललितांग मैं अपने पिता को जानती हूँ, मुझे लगता है सज्जन ने तुम्हारे बारे में पिता से कुछ गलत कह दिया है मैं चाहती हूँ तुम अपने श्वसुर को अपना परिचय वीरता के साथ दो।

ललितांग युद्ध के लिये जाता है और अपने ससुर को ललकारता है। ललितांग ने बिना अस्त्र-शस्त्र के प्रहार के ससुर की सेना को परास्त कर दिया। महासेन ने खूब प्रहार किया किन्तु वह केवल उन प्रहारों को बचाता रहा आखिर में ललितांग ने अपने अंगरक्षकों से उसे बंदी बनवा लिया। तब महासेन को लगा वास्तव में ये दासी पुत्र नहीं हो सकता जो मुझे बंदी बना ले मेरी सेना को भी परास्त कर दे। मैं देख रहा हूँ मेरी पूरी जनता आज इसके साथ खड़ी है। ये कैसा

पराक्रमी है जिसने तीन दिन में मेरी जनता को अपने वश में कर लिया। निः संदेह बहुत योग्य पुत्र है।

तब शोभना पूरा परिचय अपने पिता को देती है कि ये कोई दासी पुत्र नहीं अपितु अवन्ति देश के उज्जैनी नगरी के महाराज महापद्म और मनोहरा के पुत्र हैं। ये दानवीर, शूरवीर, गुणज्ञ, धर्मात्मा और न्यायप्रिय हैं। इनके साथ आपने ऐसा व्यवहार किया है आप इनसे क्षमा मांगो, तब तक ललितांग कहता है नहीं क्षमा मांगने की आवश्यकता नहीं आपको भ्रम पैदा हुआ था। आप मुझसे क्षमा मांगे यह शोभनीय नहीं होगा। जो कुछ हुआ वह भूलवश हुआ अब से आप उसे भूल जाओ मैं आपके प्रति कोई बुरा भाव नहीं रखता।

राजा महासेन और वसुन्धरा अपने दामाद को पूरा राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। ललितांग राज्य का विस्तार करता है। राज्य का विस्तार करते-करते बहुत आगे बढ़ा। महापद्म राजा को भी संदेश भेजा कि या तो आधीनता स्वीकार करो या युद्ध के लिये तैयार हो जाओ। महापद्म राजा युद्ध के लिये तैयार हो गया, उसे नहीं पता था कि जिसका संदेश आया है वह मेरा पुत्र है, युद्ध में महापद्म को भी बंदी बना लिया गया। बाद में परिचय प्राप्त होता है तब पुत्र ने क्षमा याचना की, अपने ही पुत्र से परास्त होकर महापद्म राजगद्दी पर न बैठ सके वे भी अपनी रानी मनोहरा के साथ दीक्षा लेकर सन्यास को स्वीकार करते हैं। ललितांग ने अनेक देशों पर अपनी विजय कीर्ति का ध्वज फहराकर सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत किया। जीवन के अंत में उन्होंने भी अपने पिता का अनुगमन करते हुये सन्यास मार्ग को स्वीकार किया।

शिक्षाः

अच्छाई सदैव अच्छा ही फल देती है बुराई बुरा ही फल देती है। सज्जन में दुर्जनता ही भरी थी उसे वैसा ही फल मिला ललितांग ने

अच्छा कार्य किया तो उसे अच्छा फल प्राप्त हुआ। हम और आप सभी अच्छे कार्य करें। अपनी करनी पर विश्वास करें, करनी पर जिसे विश्वास होता है उसे परमात्मा पर विश्वास होता है, जिसको करनी पर विश्वास नहीं उसे परमात्मा पर भी विश्वास नहीं होता। अच्छे कार्य करने वाला कभी दु:खी नहीं होता, बुरे काम करने वाला कभी सुखी नहीं होता इसलिये हम सभी को अच्छाई के निकट व बुराईयों से दूर रहना चाहिये।

सबसे खतरनाक ग्रह-परिग्रह

परिग्रह पाँचों पापों का जनक व सहभागी है, जहाँ पर परिग्रह होगा वहाँ चारों पाप भी अनिवार्य रूप से, नियम से पाये जाते हैं किन्तु वर्तमान काल में तत्त्व ज्ञान से दीन-हीन एवं मूर्ख व्यक्ति उस परिग्रह को पाप ही नहीं मानते शायद इसलिए तो दिन-रात इसी के संग्रह में लगे रहते हैं। यदि परिग्रह को पाप मान लें, तो क्या उन्हें परिग्रह से विरक्ति नहीं होगी? कोई भी जीव दु:ख नहीं चाहता किन्तु पाप दु:खों का साक्षात् कारण है। जो परिग्रही है या (परिग्रही धारी) समस्त पापों में लिप्त है, वह नियम से दुर्गति का पात्र है, अत्यंत दु:खी है। ऐसे व्यक्ति पर संत पुरुषों को क्षमा-दया करना आवश्यक है।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज
मीठे प्रवचन से

१७

अहिंसा का फल

इस भरत क्षेत्र में नर्मदा नदी के किनारे पर अशोक नाम का प्रसिद्ध नगर था इसके निकट ही भद्दलपुर नाम की नगरी थी। यहाँ राजा जयदेव अपनी सहधर्मिणी जिनदेवी के साथ राज्य का संचालन करता था, उसके एक पुत्र जिनदत्त व पुत्री जिनदत्ता थी। इसी नगर के समीप नर्मदा नदी के तट पर बसी एक भीलों की बस्ती थी जिसका नाम था ''पल्लिका''। इस भीलों की बस्ती में एक भील रहता था जो शिकारी था। वह अपना नाम बताता था ''जालिम क्रूराकार शिकारी'' वह बहुत दुष्ट था उसके मन में दया का भाव नहीं था।

एक दिन इसने देखा कि इस नदी के किनारे कुछ भीड़ जा रही है, कौन सी कैसी भीड़ है, राजा, महाराजा, साहूकार, मंत्री आदि सभी अपने-अपने वाहनों से जा रहे हैं। वह यह सब दूर से देख रहा था, फिर उसे पता लगा कि यहाँ कोई ऋषिराज पधारे हैं, यह सारी भीड़ दलबल के साथ उनकी पूजा करने के लिये जा रही है। वह जालिम क्रूराकार शिकारी भी उनके साथ वहाँ पहुँचकर, छिपकर पीछे बैठ जाता है। मुनिराज की चरण वंदना राजा रानी, मंत्री पुरोहित आदि सभी ने की। मुनिराज धर्मसेन ने अपना उपदेश दिया-वे अहिंसा धर्म के बारे में समझा रहे थे तीनों लोक तीनों कालों में अहिंसा से बढ़के कोई धर्म नहीं हैं, हिंसा से बढ़कर कोई पाप नहीं है। जो प्राणी अहिंसा धर्म का पालन करते हैं उनकी सदैव रक्षा होती है। जो हिंसा करते हैं, दूसरों को दु:ख देते हैं वे सदैव दु:खी रहते हैं।

''जो पर को दु:ख दे सुख माने, उसे पतित मानो''

जो दूसरों को दु:खी देखकर सुखी होता है वह मानो भविष्य का नारकी है, क्योंकि ये रौद्र ध्यान है। उससे वह जीव नरक आयु का बंध करता है। ऐसा मुनिराज समझा रहे थे, तब राजा आदि ने अपनी शक्ति के अनुसार अणुव्रत, शीलव्रत आदि ग्रहण किये। किसी ने सम्यक्त्व आदि को ग्रहण किया, कुछ ऐसे भी भद्र परिणामी जीव थे

जिन्होंने सन्यास को स्वीकार किया। सभी लोग नियम लेकर चले गये। वह भील भी सामने आया, उसका रूप बड़ा विचित्र था-सिर पर पत्तों

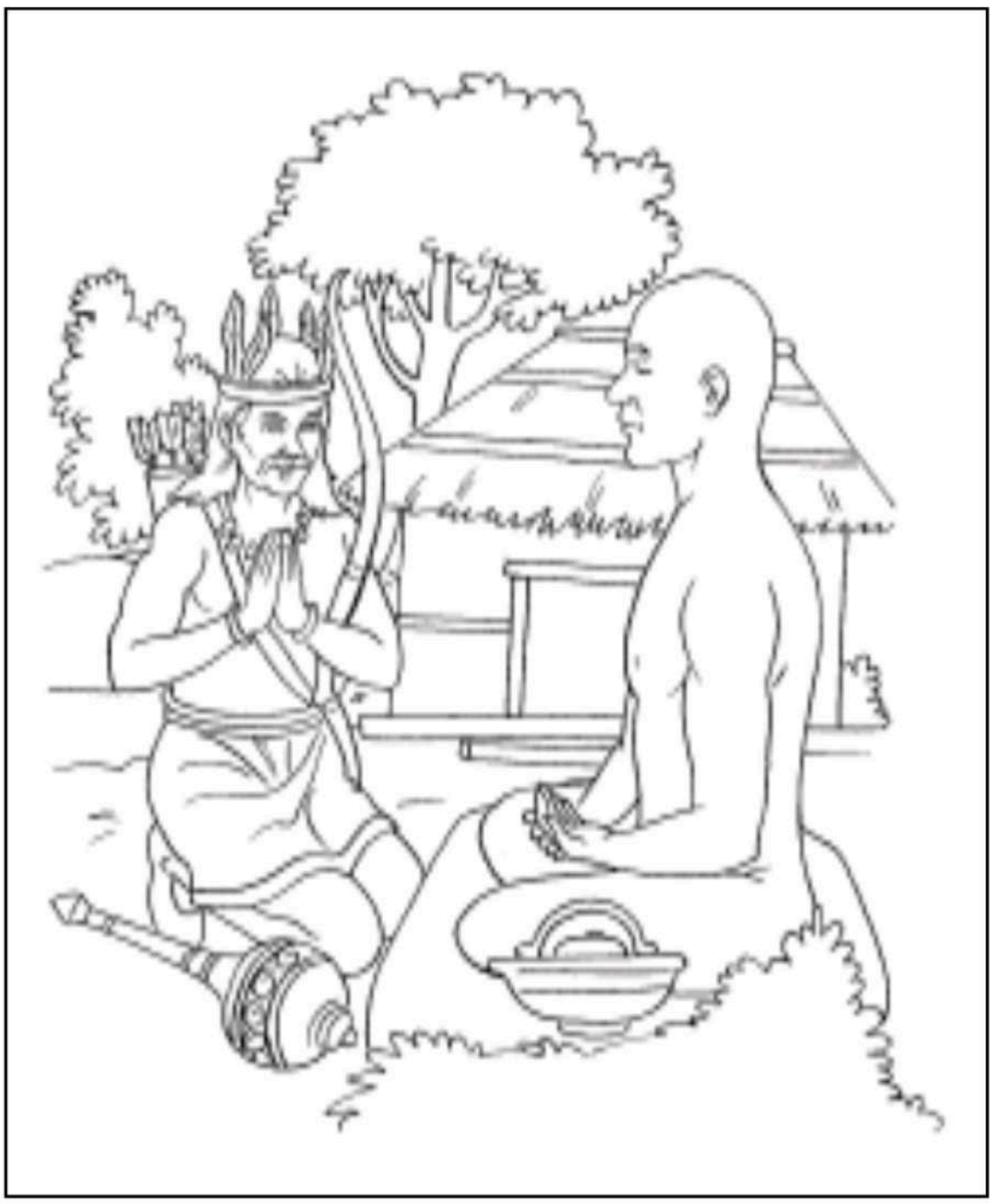

का सा मुकुट बना था, बाल बहुत बड़े-बड़े थे पूरा श्यामवर्ण का दिखाई दे रहा था, बड़ा हट्टा कट्टा था, काला सा अधोवस्त्र पहना था, एक चमकनी का दुपट्टा पहना हुआ, हाथ में तीर कमान और एक गदा थी। वह उस देश का प्रसिद्ध भील था अपने को भीलों का राजा भी मानता था।

वह महाराज के सामने पहुँचा तो कहने लगा-महाराज ! आपने सबको आशीर्वाद दिया है आप धरती के देवता हैं मेरा भी कल्याण करो महाराज ने कहा-''पापं क्षयोस्तु'' भील बोला ''महाराज आपने क्या कहा मुझे समझ नहीं आया''। मुनि बोले, ''तेरे पापों का क्षय, हो, पाप ही दु:ख का कारण है पाप के साथ रहने वाला जीव अपना कल्याण नहीं कर पाता है पापी को पहले पाप छोड़ना होता है तभी कल्याण होता है।'' उसने पूछा महाराज! मैं कैसे पाप छोड़ूँ ? मुनि ने बताया प्राणी ! दूसरे जीवों को मारना पाप है इसे तू छोड़ दे। वह बोला महाराज! मैं तो भूखा ही मर जाऊँगा, मेरा कुटुम्ब परिवार भूखा मर जायेगा, मैं शिकारी हूँ। महाराज ने कहा-देख ! जब तक तेरे मन में दया-करुणा का भाव नहीं आयेगा तब तक तू धर्म को नहीं जान पायेगा, अहिंसा दया करुणा धर्म कहलाता है, धर्म से ही सुख मिलता है। भील बोला महाराज! और कोई नियम बता दो जिससे मेरा कल्याण हो जाये, हाँ! मैं सब जीवों की रक्षा तो नहीं कर सकता किंतु एक-दो कि बात करें तो मैं छोड़ सकता हूँ। महाराज ने कहा ठीक है ! जो पहला पक्षी तेरे जाल में आये और तू उसका शिकार करने में सक्षम हो फिर भी तुम उसे छोड़ देना, किसी एक जीव की प्रतिदिन रक्षा करना है। उस पर निशाान लगा देना कि मैं उसको मारूँगा नहीं। ठीक है महाराज कहकर वह वहाँ से जाता है।

वह देखता है सामने चिड़ियों का झुंड है उसने अपना जाल फैलाया। जाल फैलाते ही देखता है बहुत सारी चिड़िया आ गयीं किन्तु जाल को जब समेटा तो सारी चिड़ियाँ उड़ गयी केवल एक रह गयी। उसने कहा मुझे एक चिड़िया पर दया करनी है तो वह उस चिड़िया को छोड़ देता है और अपनी पगड़ी से लाल धजी निकालकर उसके बांध देता है। वह चिड़िया उड़ गयी, उसे उस दिन फिर कोई शिकार नहीं मिला। हारा थका आ रहा था। सामने ही एक सर्प फुंकार मारकर डसने आ गया, इसने सर्प पर लाठी का प्रहार करना चाहा जैसे

ही लाठी मारने को हुआ तभी सर्प वहाँ से गायब हो गया। और वह चिड़िया दिखायी दी जिसके गले में लाल धजी बंधी थी, उसे आश्चर्य होता है चिड़िया कहाँ से आ गयी।

वह पुनः आगे जाता है तो देखता है सामने से एक हाथी आ रहा है इसने अपना तीर कमान निकाला तीर चलाने का साहस किया सोचा कि इसे मारकर तो मेरे बहुत दिनों का काम चल जायेगा और जैसे ही तीर छोड़ने वाला था तैसे ही वह हाथी उसकी आँखों से ओझल हो गया और वही चिड़िया दिखाई देती है। वह आश्चर्य करता है कि मेरे साथ ये क्या हो रहा है। वह पुनः अपनी आँखे मलते हुये आगे चलता है, किन्तु जैसे ही आगे बढ़ता है कि एक बकरा उसे दिखाई देता है बकरे को देखकर वह सोचता है चलो परिवार का भोजन इससे ही हो जायेगा, बकरे को मारने के लिये जैसे ही कटारी निकालता है और प्रहार करता है देखता है बकरा नहीं बकरी है, उसे उस पर दया आती है एक क्षण के लिये अपनी आँखें बंद करता है बकरी का पैर पकड़ा हुआ था आँख खुली तो देखा बकरी नहीं, वही चिड़िया थी। जिसके गले में लाल धागा था।

उसे आश्चर्य हो रहा था कि ये कौन सी देवमाया है जो एक दम चिड़िया हो जाती है। ओह ! मैंने चिड़िया को बचाने का नियम लिया है हर जीव अपने प्राण चाहते हैं इसलिये ये मुझे चिड़िया के रूप में दिखाई देते हैं। किन्तु चिड़िया को तो मैं नहीं मारूँगा भले ही मैं भूखा मर जाऊँ। इस तरह रात हो गयी किन्तु कोई शिकार नहीं मिला। वह आगे जाता है, उसे दो सांड लड़ते हुये दिखायी देते हैं वह सोचता है इन दोनों जंगली सांड़ों को मैं मार देता हूँ किन्तु जैसे ही वहाँ पहुँचा तो दो सांड़ न दिखायी देकर गाय दिखायी देती है फिर उसके मन में गाय को मारने का भाव आता है जैसे की कटारी लेकर दौड़ता है तब तक गाय भी आँख से ओझल हो जाती है। चिड़िया फिर आ जाती है वह कहता है चिड़िया तेरी रक्षा तो मैं करूँगा ही करूँगा। तभी वह

क्या देखता है एक राक्षस उसे भक्षण करने आता है। अट्टाहस करता है और उसे निगलना चाहता है उसने अपना तीर संभाला और तीर मारने को जैसे ही हुआ वह राक्षस वहाँ से गायब और चिड़िया सामने दिखायी देती है।

बड़ा परेशान आखिर हो क्या रहा है। आगे बढ़ता है तभी दूसरा एक भील शिकारी दिखाई देता है चाण्डाल के रूप में उसे गदा फेंककर मारना ही चाहता है। गदा छूटी उससे पहले ही वह भील भाग जाता है। और वहाँ पर चिड़ियों का झुंड दिखायी देता है वह सोचता है ये वो चिड़ियाँ नहीं है मैं इन्हें ही जाल में फँसाऊँगा जाल फँसाता है सब उड़ जाती हैं केवल एक चिड़िया रह जाती है जिसके गले में धागा बाँधा था। इस तरह एक नहीं दो नहीं तीन नहीं कई दिन हो गये उसने माँस नहीं खाया। उसके प्राण कंठ में आ गये और मृत्यु को प्राप्त हो गया।

वह मृत्यु उपरांत कौशल देश की विनीता नगरी में राजा महेन्द्रप्रभ रानी मनोवेगा का राजपुत्र हुआ इसका नाम मुनीन्द्रप्रभ था उसकी एक बहिन मुदिता थी, एक दिन वह जंगल से जा रहा था उसे किसी तपस्वी के दर्शन हुये, वह स्वयं को धन्य मानने लगा। पूर्व के संस्कार थे इसलिये मन में श्रद्धा का भाव था। पूछने लगा-महाराज आपको देखकर अच्छा लग रहा है मैं राजकुमार कैसे बना-मुनिराज ने बताना प्रारंभ किया-

बेटा तू पाँच बार मृत्यु से बच गया तेरी मृत्यु अभी दो बार और आयेगी। देख जब तेरा जन्म हुआ था तब किसी ज्योतिषी ने बता दिया था कि तू अपने पिता के लिये भारी है इसलिये तेरी माँ ने तुझे पिता की मृत्यु का कारण मानने से चाण्डालों को सौंप दिया था। माँ अपने पति से अधिक प्यार करती थी तू अभी जन्मा ही था। इससे तुझसे अधिक राग नहीं था। वे चाण्डाल तुझे ले तो गये किन्तु मारा नहीं तुझे शिला पर रख दिया तभी एक बकरी तुझे आकर दूध पिला गयी। पुनः

एक ग्वाला तुझे ले जाता है और अपनी पत्नी को दे देता है। वहाँ तेरा पालन पोषण होता है।

एक दिन काशी देश का राजा स्वयंप्रभ तुझे ले जाता है क्योंकि उसके कोई संतान नहीं थी, स्वयंप्रभा रानी ने तेरा पालन पोषण किया। तू अपने को उनका ही पुत्र मानता है पर वास्तव में तू महेन्द्र प्रभ राजा व रानी मनोवेगा का पुत्र है। एक बार चाण्डाल ने तेरी रक्षा की, दूसरी बार बकरी ने रक्षा की, तीसरी बार जब तू घोड़े पर बैठकर जा रहा था, तब एक काले नाग ने रास्ता रोका किन्तु दूसरा काला नाग सामने आया उससे लड़ा और उसे मारकर अलग कर दिया और तेरी रक्षा की। एक बार दो सांड आपस में लड़ रहे थे तू उनसे बचने का प्रयास करता है दोनों तुम पर वार करने ही वाले थे कि तत्काल एक गाय वहाँ से आ जाती है। वे दोनों सांड तुझे छोड़कर गाय के पीछे लग जाते हैं बाद में तूने देखा कि वहाँ न गाय है और न सांड। गाय सांड को मोहित कर ले गयी वो गाय नहीं कोई देव माया थी, जो तुम्हारे प्राण बचाने आयी थी।

इसके उपरांत जब तू आगे बढ़ा तो पुनः तूने देखा कि जंगल में एक दैत्य तुझे पकड़कर मारना चाहता है। वो तुझे गुफा में ले गया किन्तु तभी एक राक्षसाकार व्यक्ति आता है, दैत्य को बांध लेता है और तुझे हाथ से छुड़ाकर सुरक्षित रख देता है। इसके उपरांत एक बार जब तू युद्ध क्षेत्र में अपने पिता के साथ गया था उस समय तेरे पिता बंदी बना लिये गये थे तेरे ऊपर तीर का वार होने वाला था किन्तु जिस हाथी पर तू बैठा था वह हाथी बहुत समझदार था तीर तेरे सीने में लगता किन्तु हाथी ने उस तीर को अपनी सूंड में ले लिया और तेरे प्राणों को बचा लिया।

बेटा ! अभी दो बार तेरी रक्षा और होगी। एक बार तेरी रक्षा होगी-तुझे भीलों का समूह घेर लेगा उस समय कोई भील बनकर तेरी रक्षा करेगा वह भीलों का राजा सब भीलों को रोक देगा और तुझे

बंधन से छुड़ा लेगा। एक बार जंगल में जाते समय एक शिकारी तेरे ऊपर तीर छोड़ेगा तुझे हिरण समझकर जैसे ही तीर छोड़ेगा एक चिड़िया उस शिकारी की आँख में चोंच मार देगी तीर उल्टा चल जायेगा वह चिड़िया तेरे प्राणों की रक्षा करेगी। इस प्रकर हे पुत्र मुनीन्द्रप्रभ ! तुम भविष्य में इन दोनों आपत्तियों से बचकर सुदीर्घ काल तक राज्य वैभव को भोगोगे और न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करोगे। और अंत में संसार की मोहमाया से निकलकर तुम स्वयं सन्यास स्वीकार करोगे और अपने शरीर का समाधिपूर्वक त्याग करोगे, देवलोक में जाकर इन्द्रपद को प्राप्त करोगे।

पुत्र ! तूने क्रूराकार शिकारी की अवस्था में चिड़िया के प्राणदान का संकल्प लिया था, तुझे वह चिड़िया का जीव बार-बार दिखाई दे रहा था, यह किसी तपस्वी की तेरे ऊपर कोई कृपा दृष्टि थी कि वह तुझे हिंसा से बचाना चाहता था तूने भूखे प्यासे रहकर तीन दिन में अपने प्राण तो दे दिये किंतु तूने चिड़िया को देखकर उनके प्राण नहीं लिये तुझे जो कोई भी जीव दिखाई देता था वह चिड़िया के रूप में दिखाई देता था, इसलिये तूने उसके प्राण नहीं लिये। अहिंसा, दया, करुणा से तू इस अवस्था को प्राप्त हुआ और 7 बार जीव रक्षा करने से तेरी भी 7 बार रक्षा हुई।

शिक्षाः

अहिंसा धर्म लोक में सबसे बड़ा है जहाँ दया, करुणा, रहम, प्रेम, परोपकार वात्सल्य है वहीं वास्तव में धर्म होता है। जहाँ ये गुण नहीं होते वहाँ धर्म भी नहीं होता। धर्म का मूल अहिंसा ही है। इससे ही सभी अच्छाईयाँ आती है। अहिंसा समुद्र की तरह से एक गड्ढा है समुद्र नीचा होता है जहाँ अनेक नदियाँ आ जाती हैं। यदि समुद्र ही न हो तो कोई नदी नहीं आ सकती सभी नदी गुण की तरह से हैं और अहिंसा समुद्र की तरह से। आप सभी के चित्त में भी अहिंसा का वास हो।

१८

करनी का फल

वत्स देश प्रेम और वात्सल्य की गौरव गाथा गाता हुआ सुचिर काल से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है। उसमें वैशाली नाम की नगरी विशाल वैभव से युक्त और उदारता की भावना से परिपूर्ण जनाकीर्ण इतिहास के पन्नों पर लिखी गयी है। संभव है ये वही वैशाली नगरी है जहाँ जैनों के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी ने जन्म लिया था। इसी वैशाली नगरी में राजा शत्रुंजय राज्य कर रहा था, राजा शत्रुंजय शत्रुओं को जीतने के लिये ऐसा था जैसे पर्वत को तोड़ने के लिये वज्र, जैसे कमल को विकसित करने के लिये सूर्य, कुमुदिनी को विकसित करने के लिये चन्द्रमा, जैसे अग्नि को बुझाने के लिये नीर। राजा अपनी रानी जित्पद्मा के साथ स्वर्गिक वैभव व भोगों को भोगता हुआ अपना काल व्यतीत कर रहा था। इस राजा की एक पुत्री थी जिसका नाम था पद्मिनी और चार पुत्र थे-पद्मकांत, शशिकांत, रविकांत और सुकांत।

राजा की प्रजा में प्राय:कर सर्वत्र सुख और शांति थी और प्रजा अपने राजा के प्रति कृतज्ञ थी। कहते हैं काबुल में भी गधे होते हैं। कहते हैं लंका में भी विभीषण जैसे होते है, अच्छाई में भी बुराई, बुराई में भी अच्छे हो सकते हैं। इसकी प्रजा बहुत अच्छी थी पर एक ब्राह्मण परिवार ऐसा था जिसका स्वभाव इनसे विपरीत था, वह ब्राह्मण विश्वभूति नाम का था उसकी पत्नी केतु श्री थी इनके विशाखभूति नाम का पुत्र था। माता-पिता तो अच्छे थे किन्तु ये बिल्कुल धूर्त था, हठी, जिद्दी व क्रूर परिणामी था, इतना क्रूरपरिणामी की सिर्फ अपनी मनमानी करता था। इसकी एक बहिन भी थी वैशाखिका वह उसके प्रति भी बुरा व्यवहार करता। इसने इतना ही नहीं, अपने माता-पिता को भी बाहर निकाल दिया और अपनी बहिन को भी बाहर निकाल दिया, स्वयं पूरी सम्पत्ति को समेट कर बैठ गया

न किसी को एक कोड़ी दान में देता और न स्वयं अच्छी तरह से भोजन पानी करता।

एक बार इसने जंगल में जाकर एक साधु की सेवा की और वरदान मांगा मैं जिस वस्तु को भी सोना बनाना चाहूँ वह सोना बनती जाये। वरदान प्राप्त होने पर अपने भवन के सभी बर्तन आभूषण को सोने के बना लिये यहाँ तक कि अपना महल भी सोने का बना लिया, किन्तु फिर भी इसके लिये सुख शांति चैन नहीं। ब्राह्मण विशाखभूति बड़ा बेचैन रहता, इसने साधु सेवा करते-करते कई बार कहा कि हे महात्मन् ! मुझे सुख चाहिये। साधु कहता-सुख धर्म से मिलेगा, किन्तु विशाखभूति की मान्यता थी कि धन जितना हो जायेगा मैं उतना सुखी हो जाऊँगा। धन से सब साधन तो आ गये किन्तु सुख नहीं आया। पलंग तो है पर नींद नहीं है, भोजन तो है पर स्वाद नहीं है। सेवक तो हैं पर उनमें श्रद्धा का भाव नहीं है। वह बहुत व्याकुल हुआ।

एक दिन इसने अपने उन गुरु से पूछा-कि मुझे सुख शांति कहाँ मिलेगी? महात्मा ने व्यवहार में समझाने के लिये कह दिया कि सुखशांति तुझे समुद्र के किनारे मिल सकती है, वहाँ एक सिद्ध पुरुष रहता है वह तुम्हें सुखशांति का मंत्र देगा, वह ब्राह्मण समुद्र के किनारे जाता है। आवाज लगाता है-ओ महात्मा जी ! ओ मगरेश्वर महात्मा जी! ओ मगरेश्वर महात्मा जी ! खूब बुलाने पर एक मगरमच्छ मुँह ऊपर कर चिड़चिड़ाते हुये बाहर आया। वह मनुष्य की आवाज में बोला-कहिये क्या चाहते हैं आप। ब्राह्मण कहता है मुझे सुख चाहिये। मगरमच्छ कहता है मैं तुम्हें सुख का उपाय बता दूँगा इससे पहले तुम एक काम कर लो मुझे बहुत तेज प्यास लगी है तुम कहीं से एक लोटा पानी लाकर पिला दो विशाख भूति कहता है कैसा मूर्ख है-अरे समुद्र में रहकर भी प्यासा है। मगर बोला-हँसी तो मुझे भी आ रही है तू स्वयं सुख का खजाना है जिस महात्मा के चरणों में रहता है वहाँ

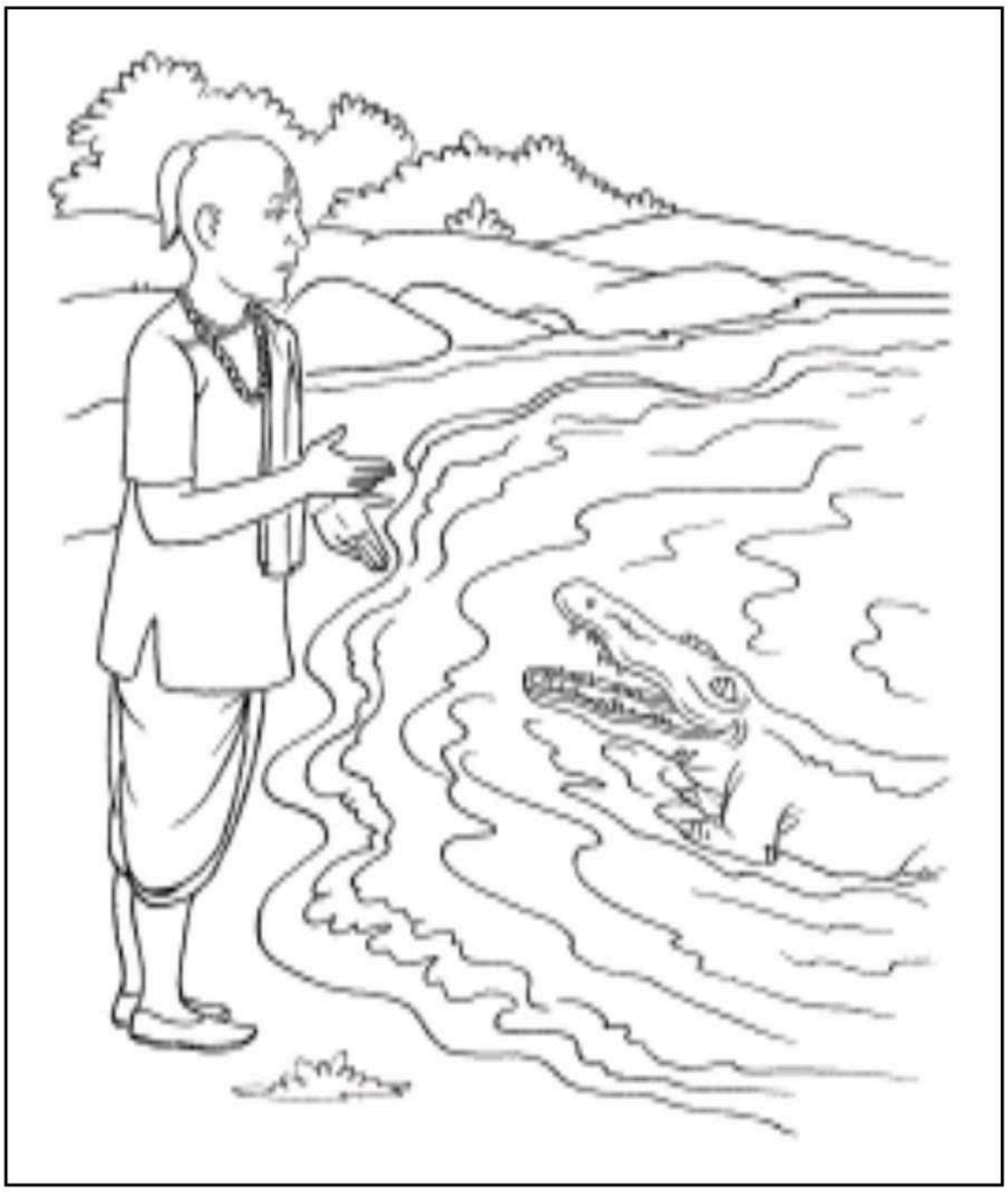

सुख का खजाना है वहाँ क्या कमी है, संतों के पास क्या कमी है जो तू मेरे पास आया है और ये कहकर के मगरेश्वर नाम का मगरमच्छ लुप्त हो जाता है। हो सकता है कोई देवमाया हो, पुनः लौट कर वह ब्राह्मण उन्हीं संत के चरणों में महर्षि सत्यदृष्टि के चरणों में, वे जो कि निष्ठावान प्रसिद्ध क्रियावान साधक थे, जाकर सेवा करने लगा।

वह अपने घर में जितना भी धन वैभव था उन सबको बेचकर के उस धन से सबकी सेवा करता। उस जंगल में जितने भी पशुपक्षी थे उन सबकी सेवा करता, बहुत सारा चारा दाना डालता हजारों पक्षी

इसके पास आकर खेलते, इसको घेर लेते इसकी रक्षा करते और सेवा करते। इसने बहुत समय तक सेवा की, अच्छी मृत्यु को प्राप्त हुआ और देवलोक में गया।

देवलोक से आयुपूर्ण कर महीधर नामक प्रदेश में सूर्यपुर नामक नगर के राजा सूर्यकांत, रानी चन्द्रिका उन दोनों के बहुत पुण्य करने के उपरांत शादी के कई बसंत निकल जाने के उपरांत जयवर्धन नाम का पुत्र हुआ। यह बहुत सुंदर कलाविज्ञ और धर्म के प्रति स्नेहवान था। बचपन से ही इसके मन में साधु के प्रति श्रद्धा का भाव रहता था और पूर्वभव के सेवा संस्कार थे। इसका विवाह यामिनी नाम की कन्या के साथ हुआ। यामिनी इसके साथ कुटिल व्यवहार करती, जयवर्धन चाहे यामिनी के साथ कितना भी अच्छा व्यवहार करता किन्तु यामिनी सदैव बुरा व्यवहार करती। इसका पुत्र भानुदत्त व पुत्रवधु विशाला यह भी इसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते थे। सूर्यकांत और चंद्रिका अपने पुत्र जयवर्धन को बहुत चाहते थे किन्तु यामिनी, भानुदत्त, विशाला ये इसको नहीं चाहते थे। यद्यपि जयवर्धन के पास खूब वैभव सुख शांति थी किन्तु पुत्र, पुत्रवधु और पत्नी को सदैव इससे विद्वेष का भाव रहता था। जयवर्धन जब कभी भी वन विहार के लिये जाता, कोई संत महात्मा मिलते उनके चरणों की सेवा करता।

एक दिन दिव्य अवधिज्ञान के धारी आकाश में भी गमन करने में समर्थ किसी तपस्वी को देखा उनके चरणों की वंदना करके जयवर्धन ने पूछा-महात्मन् ! मन में एक जिज्ञासा है-मैंने पूर्व में ऐसा कौन सा पुण्य किया कि मैं यहाँ बहुत संतोषी राजा हुआ हूँ मैंने विद्या बुद्धि, बल, धन, धर्म, न्यास सब कुछ अनुकूलता से प्राप्त किया है जो मैं सोच भी नहीं पाता वे सब योग्यतायें मैंने प्राप्त की और मेरी प्रतिष्ठा और ख्याति सभी जगह व्याप्त है। मेरा इतना विशाल राज्य है। जहाँ पूरी प्रजा मुझे प्राणपन से चाहती है इतने सारे लोग, सभी

छोटे-छोटे देश जिनका मैं राजा हूँ चक्रवर्ती के समान भोग भोगने वाला हूँ किन्तु मुझे आश्चर्य ये हो रहा है कि इतने सब पर भी -मेरी पत्नी मुझसे विद्वेष करती है। मेरा पुत्र मुझसे बैर बांधकर रहता है उसका बस चले तो मेरे प्राणों को ले ले, मेरी पुत्रवधु विशाला भी मुझसे विद्वेष का भाव रखती है इसका क्या कारण है?

महाराज ने बताया-बेटा ! पूर्वभव में तू विशाखभूति नाम का ब्राह्मण था। उस समय तेरे मन में धन के प्रति बहुत लोभ था, तू शांति सुख-धन के माध्यम से चाहता था किन्तु सुख शांति तुझे नहीं मिली, फिर तूने सत्यदृष्टि नाम के महात्मा की सेवा की, सेवा करने से तुझे बहुत आनंद आया-

कटुफल भी मेवा लगें, करें यदि सेवा,
गुरुजन भी प्रभु देव लगें, सच्चे सुख देवा।
मात पिता ही दीखते, भवदधि से खेवा,
सत्संग सेवा नित करो करो पाप क्षेवा॥

और पहले जब तू बिना सेवा के रहता था, तब तूने बहुत धन इकट्ठा कर लिया था-वही तुझे ऐसा लगता था जैसे-

सेवा बिन मीठा लगे, प्राणों का लेवा,
बन्धु जन भी भासते, दुःखों के देवा।
मित्र सखा जन स्वार्थी दीखों जो फरेंवा।
इसीलिये सब भव्य जन करो नित्य सेवा॥

तो ऐसे तेरे गुरु सत्यदृष्टि ने तुझे उपदेश दिया था। जयवर्धन बोला-मुनिवर ! आप ठीक कहते हैं मुझे अपने पूर्वभव की स्मृति आती है। सत्यदृष्टि गुरु ने मुझे समझाया था सेवा के बारे में बताया था। तूने फिर सिर्फ उनकी सेवा नहीं की पूरे जंगल में व्याप्त पशु-पक्षी जानवर, सभी दुःखी प्राणियों की सेवा की। तूने पहले अपने गुरु से वरदान लिया था मैं जिस वस्तु को चाहूँ वह स्वर्ण बनती

जायें, जिससे तूने बहुत सारा वैभव इकट्ठा कर लिया था, तूने उसे बेचकर पुनः सारा धन सेवा में लगा दिया। बाद में आयु के अंत में तूने सन्यास पूर्वक प्राणों का अंत किया और देव लोक गया वहाँ से चयकर तू जयवर्धन राजा बना।

जयवर्धन ने कहा-महाराज आपकी बात सही है कि उस फल स्वरूप में संतोषी राजा बना किन्तु मुझे एक बात समझ नहीं आती मैंने अपनी पत्नी यामिनी का क्या बिगाड़ा और मेरा पुत्र भानुदत्त मुझसे विद्वेष और ईर्ष्या क्यों करता है उसकी पत्नी विशाला भी बैर भाव रखती है। मैं तो इनके लिये अच्छा करना चाहता हूँ किन्तु इनके मन में मेरे प्रति द्वेष का भाव है। मुनिराज ने कहा-जयवर्धन तुम शायद भूल गये हो ये कोई और नहीं जब तू विखाशभूति था तब तेरे जो पिता थे विश्वभूति, माँ थी केतुश्री और बहिन वैशाखिका इन तीनों को तूने घर से निकाल दिया था, धन के लोभ में आकर के। आज वही तेरे पिता मरकर तेरा पुत्र भानुदत्त हुआ है, तेरी जो माँ थी वो मृत्यु को प्राप्त होकर तेरी पत्नी यामिनी बनी है और बहिन थी वह तेरे पुत्र की पत्नी अर्थात् भानुदत्त की पत्नी विशाला बनी है। तेरी माँ का जीव यहाँ आकर तेरी पत्नी बनकर बदला ले रही है, पिता बेटा बनकर बदला ले रहा है। और बहिन भी विद्वेष पूर्वक पुत्रवधु होकर अपना दुःख निकाल रही है। इसलिये तू उनसे क्षमा माँग उनसे कह-मैंने जो कुछ भी भूलवश किया उसे क्षमा करो और इससे उन्हें भी अपने पूर्व भव का जातिस्मरण हो जायेगा वे भी तुम्हें क्षमा कर देंगे।

राजा जयवर्धन ने महल में जाकर के अपनी पत्नी यामिनी, पुत्र भानुदत्त व पुत्रवधु विशाला तीनों को अपनी पूर्वभव की कहानी सुनाते हुये क्षमा मांगी, उन तीनों को भी जाति स्मरण हो गया उन तीनों ने भी इसे क्षमा कर दिया। जयवर्धन अतिथि सेवा, प्राणी सेवा का संकल्प लेता है पुनः उन्हीं मुनिराज के पास जाकर के सन्यासी हो जाता है और पुनः तपस्या करके शरीर का त्याग कर देव लोक में इन्द्र

होता है, अन्य साथी जन भी देव बनते है। आगे भवों में विशालभूति का जीव अपना कल्याण करेगा इसके साथ अन्य भी बहुत सारे जीव मुक्ति को प्राप्त करेंगे।

शिक्षाः

प्राणी जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। कर्म करनी की परछाई है अतः सदैव अच्छा करने का प्रयास करना चाहिए। दूसरी बात साधुओं की सेवा का सौभाग्य मिले तो तीनो योगो अर्थात् मन, वचन, काय से उनकी सेवा करनी चाहिए। सेवा से बढ़कर के कोई धर्म नहीं है। सेवा ही मोक्ष की मेवा को, संसार के सुख को देने वाली है। इसलिये आप और हम दोनों को ही सेवा करना चाहिये, यही इस कहानी का सार है।

जैसी करनी वैसी भरनी

क्या कभी बबूल बोने से किसी को उस वृक्ष पर आम के फल मिले हैं? क्या अग्नि कुंड में किसी को शीतलता मिली है? क्या किसी को विष का सेवन कर अमृत्व की प्राप्ति हुई है? क्या किसी मोही जीव को आत्मसुख मिला है? नहीं मिला, तब क्या किसी को असंयम व मिथ्याचरित्र से आत्मगुण रूपी निधि मिल सकेगी? अतः यह निश्चित है, ध्रुव सत्य है कि कुपथ पर चलने वाला व्यक्ति कभी सुपथ की मंजिल को नहीं पा सकता। अतः अपनी जिद को छोड़कर अपनी दिशा को बदल लें, सुनिश्चित है कि तब आपकी दशा भी बदल जायेगी और अंतिम मंजिल भी।

-आचार्य श्री १०८ वसुनन्दी महाराज

मीठे प्रवचन से

१९

जो सुख चाहो आत्मन्

आज से बहुत समय पहले की बात है। उस समय नालंदा विश्वविद्यालय में विभिन्न देशों के विद्यार्थी आकर के विद्या प्राप्त करते थे। वे विद्यार्थी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अपने-अपने विषय में बड़े पारंगत और निष्णात होते। कोई ज्योतिष पढ़ता, कोई वैद्यिक पढ़ता, कोई वास्तु पढ़ता, कोई मंत्रों को पढ़ता, कोई तंत्र

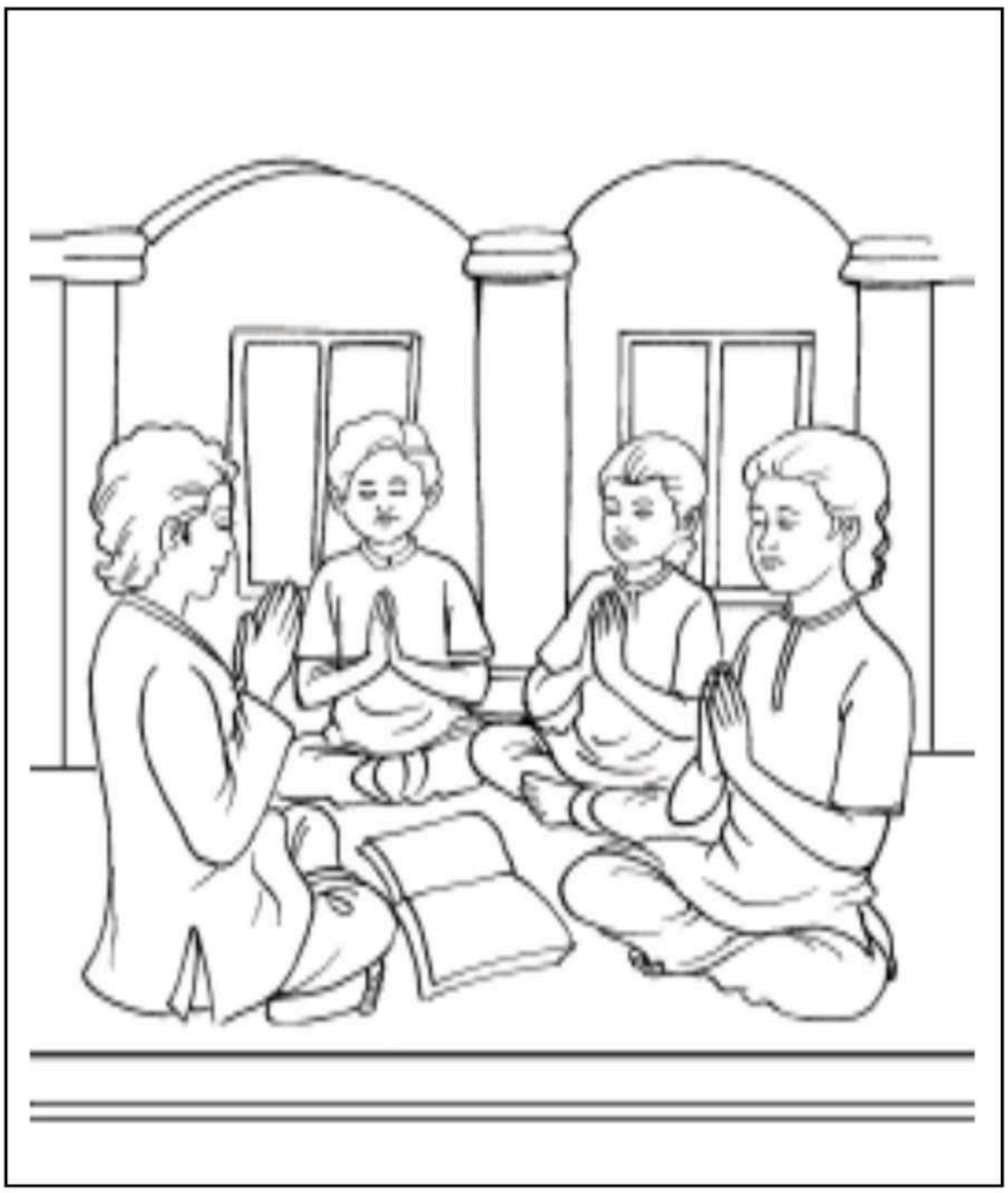

साधना करता, कोई न्याय का अध्ययन करता, कोई व्याकरण में निष्णात होता, तो कोई सिद्धान्त में, कोई पाक कला में, कोई संगीत कला में कोई नृत्यकला में सब अपनी-अपनी रुचिअनुसार अपने विषय में निष्णात होते थे। चार विद्यार्थी ऐसे थे जो साधना के क्षेत्र में उतरे, चारों विद्यार्थियों की रुचि अलग थी, उन चारों के नाम थे-चन्द्रगुप्त, दयामित्र, प्रभंकर, सुमित्र।

पहले विद्यार्थी ने अपने गुरु से चिन्तामणि रत्न के बारे में पूरी विधि जान ली और उसे प्राप्त करने के लिये साधना रत हुआ। पुण्य का संचय करके वह साधना करता रहा किसी भी प्रकार से चिंतामणी रत्न को प्राप्त करके रहूँगा। दूसरा दयामित्र विद्यार्थी उसने कहा-मैं कल्पवृक्ष की सिद्धि करूँगा। तीसरे विद्यार्थी प्रभंकर ने कहा-मैं कामधेनु गाय की सिद्धि करूँगा, चौथे सुमित्र के मन में धर्म का भाव था उसने कहा मैं किसी साधु की सेवा करके धर्म की सिद्धि करूँगा।

चारों प्रसिद्धि को प्राप्त थे और सिद्धि के लिये चल पड़े। उन्होंने अपने-अपने संकल्प के अनुसार साधना की। साधना में कहीं चूक नहीं की पूरे मनोयोग और प्राणपन से साधना की, उन चारों को अपने-अपने कार्य में सफलता प्राप्त हुयी। चन्द्रगुप्त ने चिंतामणी रत्न को प्राप्त किया, चिन्तामणी के माध्यम से वह सोचता है मेरे पास दिव्यरत्नों का ढेर लग जाये तो उसके पास रत्नों का ढेर लग जाता है। सोचता है रत्नों का महल बन जाये तो वह भी बन जाता है चिन्तामणी रत्न को हाथ में लेकर जैसा चाहता है वैसा होता गया। रत्नों की दिव्य कांति से बहुत तेज निकल रहा था मानों अग्नि की ज्वाला ही हो। कहीं ये मुझे भस्म ही ना कर दे, इतना सुनना ही था, चिन्तामणी रत्न हाथ में होने से, नकारात्मक सोच आयी और वह स्वाहा हो गया।

दूसरा जो साधक था-दयामित्र जिसने कल्पवृक्ष की सिद्धि की और प्राप्ति भी हुयी। वह कल्पवृक्ष के नीचे थका बैठा था कल्पना करने लगा-वह कहता है थकान आ रही है यदि ठंडी हवा चले तो

बहुत अच्छा रहे तुरंत ठंडी हवा चलने लगी, उसे आनंद आ गया। फिर कहता है मुझे प्यास लगी है। ठंडा पानी आ जाये तो अच्छा रहे-वह भी आ गया। इस पानी में मिठास और सुगंध होती तो, वह भी आ गयी। फिर कहता है भूख लगी है अब तो भोजन चाहिये-तुरंत ही दिव्य व्यंजन स्वर्णपात्र में आ गया। सोचता है रहने के लिए सुंदर सा महल होता तो अच्छा होता, तुरंत ही महल खड़ा हो गया, जितना-जितना मांगता गया मिलता गया। महल के बाहर देखता है तो वही घनघोर जंगल है, वह कहता है यहाँ तो हिंसक जानवर रहते हैं यदि कोई शेर आकर मुझे खा जाये तो तब तक एक भयंकर शेर आता है और उसे खा जाता है।

तीसरे विद्यार्थी ने साधना के बल से कामधेनु गाय की सिद्धि की। कामधेनु गाय उसे प्राप्त हो गयी वह उस गाय के माध्यम से कहता है कि इसका तो इतना प्रभाव है कि मैं तीन लोक की यात्रा कर सकता हूँ वह यात्रा करने जाता है, फिर कहता है-मैं पहाड़ की चोटी पर चढ़ना चाहता हूँ वह वहाँ भी पहुँच गया। पुनः कहता है अब मैं पृथ्वी तल पर जाना चाहता हूँ वह समुद्र की गहराई में जाने लगता है। वहाँ जाकर कहता है इस समुद्र तल में एक अच्छा महल बन जाये, मैंने परियों की कहानी में सुना था कि पाताल में महल होता है, इससे वैसा ही महल बन गया। वह कहता है मेरे पास यहाँ अप्सरायें आतीं तो ठीक रहता वह भी आ गयीं। पुनः कहता है मुझे अमृतोपमा भोजन मिलता तो अच्छा लगता, वह भी आ गया। पुनः कहता मेरे पास करिश्मा चमत्कारी विद्या होती तो आमोद प्रमोद करता पुनः वह भी हो गया। वह सोचता है मैं पानी के इतने भीतर आ गया यदि कदाचित् इतने गहरे पानी में मेरी विद्या नष्ट हो गयी तो यहीं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊँगा, इतना कहना ही था कि समुद्र में ही सब महल आदि नष्ट हो गया और वह स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो गया।

चौथा विद्यार्थी सुमित्र-उसने धर्म की साधना की। इस साधना में उसने कहा-मुझे अच्छे साधक की प्राप्ति हो। वह साधना कर रहा था, जंगल में ही उसे गहन तपस्वी साधु मिले। वह उनके चरणों में जाकर के माथा टिकाता है व उनकी सेवा करता है। सेवा करते-करते सोचता है साधु पुरुष की संगति कभी खाली नहीं जाती जैसे शक्कर की संगति से आटा भी मीठा हो जाता है, जैसे रंग की संगति से पानी भी रंगीन हो जाता है उसी प्रकार साधु पुरुष की संगति से मैं भी संत महात्मा बन जाऊँगा। वह साधु सेवा करते-करते महात्मा बन जाता है। फिर सोचता है साधु की संगति तो पारसमणि की तरह से है, पारसमणि लोहे को सोना बना देती है, साधु केवल साधु नहीं बनाते वे तो भगवान बना देते हैं।

''पारसमणि अरु संत में ये ही अंतर जान,
वह लोहा सोना करे, ये कर देते भगवान॥

साधु तो भगवान बना देते है। स्वयं सम भी बना लेते हैं, पारसमणि भी बना देते है, कुन्दन भी बना देते हैं। व्यक्ति साधु सेवा करते-करते एक दिन परमात्मा बन जाता है।

जो धर्म के निकट में रहता है उसके जीवन में नकारात्मक विचार नहीं आते हैं। वह सदैव सकारात्मक सोचता है चन्द्रगुप्त, दयामित्र, प्रभंकर इन तीनों ने भौतिक विद्याओं को सिद्ध किया, सिद्ध कर उनके फल को तो प्राप्त किया किन्तु फल प्राप्ति पर भी निष्फल हो गए। उनके फल अनर्थकारी हो गये। बिना धर्म के अंश के जितनी भी संसार की भौतिक उपलब्धियाँ होती हैं वे सब अनर्थकारी होती हैं। हम आपसे भी यही कहना चाहते हैं कि आप लोग भी जीवन में धर्म का अंश धारण करके ही भौतिक कार्यों को सम्पन्न करना। अनादि काल से जो चार पुरुषार्थ धर्म अर्थ काम मोक्ष दिये हैं, इसमें धर्म को पहले नंबर पर रखा है फिर अर्थ को, फिर काम को, फिर मोक्ष को रखा है।

जिस प्रकार दो किनारों के बीच में नदी बहती है। वह नदी नि:संदेह समुद्र तक पहुँच जाती है। यदि धर्म का घाट न हो तो नदी संहारक हो जायेगी, मोक्ष तट न हो तो भी संहारक हो जायेगी। वह अर्थ काम की कीचड़ पैदा करने वाला, विषय वासना में डुबाने वाला होता है

शिक्षा:

अच्छे बच्चों ! प्यारे बच्चों ! इन कहानियों को पढ़कर आप भी अपने जीवन में धर्म को स्थान देना यही धर्म जीव को सुख देने वाला है। और कोई भी संसार में शाश्वत सुख नहीं दे सकता, इसलिये आप सुख चाहते है तो वह धर्म ही सुखी कर सकता है। धन किसी को सुखी नहीं बनाता वह तो बुद्धि को खराब कर देता है इसीलिये अपने जीवन में सबसे ज्यादा महत्व धर्म को देना तभी तुम्हारा भला होगा।

२०

देता छप्पर फाड़ के

कुरुजांगल देश में हस्तिनागपुर नाम की एक सुंदर नगरी थी। जो नगरी प्राग् वैदिक काल से ही धर्म के क्षेत्र में, इतिहास के क्षेत्र में, अर्थ व्यवस्था के क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में, व्यवहार कुशलता के क्षेत्र में वृद्धि को प्राप्त रही है। उस समय यहाँ अरिंदम नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी मृगावती थी। राजा न्यायप्रिय, प्रजावत्सल पराक्रमी था। उसकी महारानी पति के गुणों में अनुराग रखने वाली धर्म वत्सला थी। उस राजा के एक पुत्री थी शोभना व एक पुत्र था अरिंजय।

उसी देश में एक अर्हदास नाम का सेठ रहता था-उसकी सेठानी का नाम था जिनमती। उनके यहाँ एक संतोषी ग्वाला था। उसे धर्म के बारे में एक अक्षर का भी ज्ञान नहीं था, किन्तु इतनी बड़ी श्रद्धा थी कि मेरे सेठ जी सुबह से लेकर 9-10 बजे तक पूजा पाठ करते हैं शाम को संध्यावंदन करते हैं, दोपहर में सामायिक करते हैं, दान आदि देते हैं अत: उनके यहाँ खूब समृद्धि हो रही है और मुझे भी यहाँ काम करने में शांति मिलती है और मुझे क्या चाहिये। मुझे शांति क्यों मिल रही है क्योंकि मैं ईमानदारी से काम करता हूँ। सेठ जी के यहाँ संत-महात्मा जी के मुख से सुना है कि जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है, धर्म करने से कोई दु:खी नहीं होता, पाप करने वाला कभी सुखी नहीं रह सकता। मैंने ये भी सुना है जिसके भाग्य में जो होता है वही होता है, व्यक्ति दूसरे की वस्तु छीन ले तब भी उसका भोग नहीं कर पाता और यदि अपने भाग्य का है तो वस्तु कहीं भी हो वह अपने तक आ ही जाती है। कोई वस्तु पैदा करता है कोई उगाता है, कोई बेचता है, भोगने वाला कोई और होता है। कोई व्यक्ति चोरी करके लाता है रक्षा करता है किन्तु भोग कोई और लेता है पुण्यात्मा व्यक्ति ही भोक्ता होता है पापी व्यक्ति रक्षक तो हो सकता है किन्तु भोक्ता नहीं।

वह बेचारा ग्वाला 'गोपीनाथ' प्रतिदिन गाय चराने जाता और सेठ की गाय बांध कर आ जाता। और अपनी झांपड़ी में आकर आराम से रहता। उसकी चार दीवारी लकड़ी का बना कमरा, जिसमें छप्पर पड़ा था इतना सा मकान था जिसमें वो रहता था। घर के बाहर एक बूढ़ी गाय बंधी रहती, उसकी पत्नी उसकी सेवा करती थी। गाय जो थोड़ा दूध देती उसको बेचकर उसके घर का पालन होता। ग्वाला तो सेठ के यहाँ भोजन करता ही था और जो कुछ आवश्यकता पड़ती थी तो सेठ महिनेदारी पर कुछ पैसे दे देता था, वह ग्वाला इससे बड़ा संतुष्ट था। ग्वालिन भी संतोषी थी फिर भी उसके मन में कहीं न कहीं तृष्णा का भाव था, उसे लगता था मुझे धन प्राप्त हो, सभी महिलायें अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहनती हैं, तो मुझे भी मिले।

ग्वाला कहता था-देख भाग्यवान्! जब भगवान देंगे तो हमारे यहाँ किसी चीज की कमी न रहेगी। गोपीनाथ को गोपाल अवश्य देंगे, मैं गोपाल की गाय पालता हूँ ना। गोपीनाथ पर गोपाल प्रसन्न हो जायेंगे तू चिन्ता न कर तुझे गोपीन्द्र अवश्य मिलेगा। उसकी एक भावना तो तब पूर्ण हो गयी जब उसकी पत्नी को गर्भ रहा पुनः एक पुत्र हुआ उसका नाम अपनी मनोभावना के अनुसार गोपीन्द्र रख दिया। वह बहुत खुश हुआ भगवान के प्रति उसकी श्रद्धा और बढ़ती चली गयी।

एक दिन जब वह गोपीनाथ गाय चराकर के लौट रहा था, उसने देखा एक गाय झाड़ी के बीच में चली गयी। वह शेष गायों को रोककर के झाड़ी के पास गया वह उस गाय को निकालने बड़ी दया से गया। उसने गाय को वहाँ से निकाला देखा जहाँ गाय खड़ी है वहाँ एक स्वर्ण कलश रखा है। उसने उघाड़ कर देखा तो उस कलश में तो स्वर्ण की अशर्फी भरी रखी थी। वह कहता है ठीक है गोपाल मुझे यहाँ ये दिखाकर लोभी बनाना चाहते हो। तुमने ही बताया था गीता में-कि मैं बेईमान को नहीं ईमानदार को ही सब कुछ देता हूँ। मैं

बेईमान नहीं बनूँगा ये दिखाकर के मुझे लालची बनाना चाहते हो। मैं और मेरे सेठ जी न्याय मार्ग पर चलते हैं मैं अन्यायी नहीं बनूँगा। यदि

तुम्हें देना है तो मेरे घर भिजवा देना, मेरी तो टांग टूट जायेगी इसे घर ले जाने में।

गोपीनाथ घर चला गया, जाकर के सेठ जी की गाय बांधकर आ गया और अपनी गाय भी बांध ली। शाम को मट्ठा में डालकर 8 रोटी खायी और लम्बे पैर करके सो गया। उसकी पत्नी बोली-क्या बात

है? आज कुछ उदास से दिखाई दे रहो हो, कुछ बोल भी नहीं रहे। तुम्हें देख के लग रहा है मुँह में कुछ मिशरी सी घुल रही है। वह बोला कुछ नहीं बस ऐसे उं-उं। अरे ! उं उं क्या? बताओ तो सही क्या कहना चाहते हो। बात ये है भाग्यवान्! आज जब मैं गाय चराकर लौट रहा था, तो एक गाय मुझे झाड़ी के पास ले गयी वह जहाँ खड़ी थी मैं वहाँ गया, वहाँ पर सोने के कलश में इतनी सारी मोहरें भरी थीं कि इतनी तो मैंने जीवन में कभी देखी भी नहीं थी। पत्नी बोली-तुम तो निरे मूर्ख के मूर्ख ही हो, मैं तुम्हें कितना पढ़ाऊँ, कितना समझाऊँ तुम्हारी समझ में एक बात नहीं आती। वह बोला-क्या कहूँ भाग्यवान् मैं क्या करता ? जब गोपाल देंगे तो घर में आकर दे देंगे, मैं कैसे लेकर आता मेरी तो टांग ही टूट जाती।

पत्नी बोली अच्छा तो चलो हम दोनों अभी ले आते हैं। वह बोला-हम नहीं जा रहे, भगवान्! जब देते हैं तो छप्पर फाड़ के दे देते हैं। वे यहीं आकर दे देंगे, हमें नहीं चाहिये ऐसा धन, गर पकड़े गये तो राजा कहेगा चोरी करके लाया हूँ। वहीं पड़ोस की एक बाई वह भी कमजोर नहीं थी वह भी तृष्णा में आगे थी, वह ये सारी बातें कान लगाकर के सुन रही थी। उसने पूरी बात सुन ली। जाकर अपने पति से कहती है-देखो-उधर झाड़ी में एक सोने का घड़ा रखा है जिसमें बहुत सारी अशर्फी और मोहरें हैं चलो अपन दोनों चलकर सब ले आयें। वह बोला तुझे कैसे पता? वह बोली मैंने गोपीनाथ की सारी बातें सुनी वह अपनी पत्नी से ये सब कह रहा था, वह बोला ठीक है।

वे दोनों रात्रि में चुपचाप चल दिए। काँटों से सारा शरीर तो लहु लुहान ही हो गया, कपड़े भी तार-तार फट गये, किन्तु लोभ बहुत बड़ी चीज होती है। उन्हें वह कलश दिख गया और उठाकर के ले आये। चोरों की तरह चुपचाप अपने घर के किवाड़ बन्द करके, कलश का मुँह खोला। देखा तो ये क्या? उसमें तो फण फैलाकर

काला नाग फुंकार दे रहा था, उसने जल्दी से ढक्कन बंद किया और कहने लगा-अच्छा गोपीनाथ तू इतनी बड़ी चालाकी मेरे साथ खेल रहा है झूठ बोल रहा था, अब देख तूने जैसा किया है तुझे वैसा ही फल मिलेगा, बहुत ईमानदार बनता है, डींग मार रहा था इतनी लंबी।

पत्नी बोली तुम चिंता क्यों कर रहे हो तुम कलश को उठाओ तो सही, उन्होंने कलश उठाया और अपने कमरे की छत पर पहुँच गये बगल में ही गोपीनाथ के कमरे का छप्पर था वे सहज-सहज कर वहाँ पहुँच गये। गोपीनाथ और उसकी पत्नी उसी छप्पर के नीचे सो रहे थे उन दोनों ने छप्पर में छेद किया, गोपीनाथ समझ गया कि ऊपर कोई न कोई है। वह पड़ोसी जो था उसने उस छप्पर के छेद में से वह साँप वाला कलश उलट दिया। और जैसे ही वह कलश उलटा तो उसमें से सोने की अशर्फी, मुहरें बरसने लगीं।

गोपीनाथ ने अपनी पत्नी से कहा-देख भाग्यवान् ! मैंने कहा था-भगवान जब भी देता है तो छप्पर फाड़ के देता है। यह देख पड़ोसी की आँख तो फटी की फटी रह गयी, ऐसा कैसे हो गया मैंने तो साँप बिच्छू को देखा था, ये सोना चाँदी कैसे हो गया कहीं तुम्हारे देखने में गलती तो नहीं हो गयी। अरे गलती काहे की हो गयी, मेरा नसीब खराब है, मेरे भाग्य में ही साँप बिच्छू रखे हैं। मेरे मन में खोट है, पाप है इसलिये सोना-चाँदी, रत्नआभूषण भी साँप बन जाते हैं और जिसका मन अच्छा होता है उसके लिये साँप बिच्छू भी रत्न बन जाते हैं और कोयले भी हीरे बन जाते हैं। गोपीनाथ का भाग्य अच्छा है, लक्ष्मी जब आती है तो छप्पर फाड़ कर आती है और जब जाती है तो चमड़ी उधेड़कर ले जाती है।

उसी समय की बात है जो दूसरा व्यक्ति (पड़ोसी) था उसके पास कुछ रत्न थे, उसने बहाना कर दिया कि मुझसे वे रत्न गुम गये उसने किसी दूसरे के रत्न हड़प लिये। चोरों को जब पता चला तो वे उसके पीछे पड़े किन्तु वह उनके पकड़ में नहीं आया, फिर भी चोर

तो चोर उसका पीछा न छोड़ें। वह सोचता है कि मेरा घर मिट्टी का बना है, उसे तोड़ कर ले जायेंगे। उसने क्या किया कि वे रत्न अपने मुँह में दबा लिये। चोरों ने पकड़ कर कहा–निकाल क्या है तेरे पास। वो बोला–मेरे पास क्या है मैं तो फटे से कपड़े पहना हूँ, उन्होंने कहा इसके मुँह में कुछ लगा है। इसलिये इसकी आवाज ऐसी आ रही है, उन्होंने उसका कस कर मुँह पकड़ा किन्तु मुँह नहीं खुला। चोरों ने चमड़ी पकड़कर कनपटी से खींची चमड़ी निकल कर बाहर आ गयी छेद हो गया देखा तो रत्न बाहर निकल कर आ गये और चोर लूट कर ले गये। तो लक्ष्मी जब रूठ करके जाती है तो चमड़ी उधेड़ कर ले जाती है और आती है तो छप्पर फाड़ करके आती है। यह कहावत इसलिये तब से चली आ रही है–

''कि देने वाला दाता जब भी देता है छप्पर फाड़कर देता है, और जब भी लेता है चमड़ी उधेड़ कर लेता है।''

शिक्षाः

सदैव अपने भाग्य पर विश्वास करो, अच्छे कार्य करो बुरे कार्य छोड़ो, इससे ही आत्म कल्याण होता है।

२१

मुट्ठी भर दान से मिला वरदान

श्रावस्ती नगरी में एक पूर्णचन्द्र नाम का सेठ रहता था। वह सेठ बड़ा धर्मात्मा था, पूर्ण चन्द्रमा की तरह उसका यश सब ओर फैल रहा था। पूर्णचन्द्र नैतिक कर्त्तव्यों का निष्ठा के साथ पालन करता, धर्मध्यान और पूजा पाठ करता। उसकी पत्नी का नाम रत्नवती था, वह उससे 'रत्ना' कहता था। उन दोनों के एक पुत्र हुआ जिसका नाम था शशिचंद्र। शशिचंद्र हीन पुण्यात्मा था, जिसके कारण उसका यश पिता के बराबर नहीं फैल पाया, यद्यपि शशि चंद्र ने भी पिता की संपत्ति का बहुत दान दिया, किन्तु वह दान अपने नाम के लिये दिया, धर्मशालायें बनवायीं, विद्यालय खुलवाये, कुयें बनवाये, प्याऊ खुलवायी, बाग-बगीचे लगवाये, सड़क बनवायी और भी विश्राम गृह आदि बनवाये, किन्तु बनवाने के पहले ही उसने अपने नाम का पटिया उस पर लगवा दिया, बड़े-बड़े अक्षरों में अपना नाम लिखवा दिया।

पिता की संपत्ति का दान विपुल मात्रा में कर अब शशिचंद्र गरीब हो गया। उसकी शादी भी शशिकांता नाम की कन्या के साथ हो चुकी थी। वह बहुत सरल सहज और धर्मात्मा थी, वह अपने पति को सदैव धर्म कार्य की प्रेरणा देती रहती थी। शशिचंद्र भी धर्म पर विश्वास तो करता था पर अपने नाम-ख्याति के लिये बहुत काम करता, मूल धर्म में उसका मन नहीं लगता। उसकी भावना भी अंदर से करुणा-दया धर्म की नहीं होती थी। पाप कर्म के उदय में शशिचन्द्र की पूरी संपत्ति नष्ट हो गयी। दोनों प्राणियों को अपने पेट का पालन करना असंभव सा हो गया। पूर्णचन्द-रत्नवती की जो प्रतिष्ठा थी अब वह हीन होती चली गयी। अभी तक तो अपने नाम के लिये पिता की सम्पत्ति का दान कर दिया किन्तु अब प्रतिष्ठा तो गिरेगी ही, क्योंकि व्यक्ति जब स्वयं कमाये ही नहीं पिता की सम्पत्ति

को खर्च कर दे तो फिर गरीबी आएगी ही और कोई पुण्यात्मा जीव हो तो उसे बिना कमाए मिल जाए। किन्तु पुण्य उसका क्षीण हो चुका था इसलिये दरिद्रता ने उसके घर पर आकर डेरा डाल लिया था। शशिकांता अभी भी हताश, निराश और उदास नहीं हुई, वह आशावान् नारी थी। वह अपने पति को समझाती कि चिन्ता न करो अपना भाग्य अच्छा होगा, दिन फिर जायेंगे एक दिन सब अच्छा होगा।

एक दिन वह कहने लगी-प्राणनाथ! अच्छा हो कि हम कुछ व्यापार करें। वह कहता है-तुम कहती तो ठीक हो पर बिना धन के व्यापार कैसे किया जाये, बिना पूंजी के व्यापार नहीं होता। वह कहती है-मैंने सुना है काशीपुर में एक महेन्द्रपुर नाम का नगर है वहाँ पर एक महीदत्त नाम का राजा राज्य करता है वह बहुत न्यायप्रिय, प्रजावत्सल और धर्मात्मा है। पुण्यात्मा व्यक्ति के पुण्य को गिरवी रखता है और पैसा उधार देता है। यदि कोई वस्तु गिरवी रख जाये तो उसे भी पैसे दे देता है, क्यों न आप भी वहाँ चले जाओ और अपना पुण्य गिरवी रखकर पैसे ले आओ जिससे व्यापार कर सको।

उसने कहा-तू कहती तो ठीक है पुण्य तो मैंने बहुत सारे किये हैं कोई भी पुण्य गिरवी रख दूँगा। रास्ते में 3-4 दिन लगेंगे मैं वहाँ पर भूखा प्यासा कैसे रहूँगा। शशिकांता ने कहा तुम चिंता न करो मैं कुछ व्यवस्था करती हूँ। उसने अड़ोस पड़ोस में से कुछ माँग कर मूंग की दाल और चावल की पोटली बनाकर उसको दे दी और कहा-मार्ग में कहीं अनुकूलता देखकर के खिचड़ी बना कर खा लेना, फिर वहाँ पर पहुँच कर आपके पास धन तो आ ही जायेगा, लौट कर के अपने धन के माध्यम से भोजन कर लेना।

शशिचन्द्र चला गया वह अपने पिता पूर्णचन्द्र की प्रतिष्ठा को लेकर गया। उसके पिता को लोग पुण्यात्मा-पुण्यात्मा कहते। पूर्णचन्द्र की वजह से, उसके पिता की वजह से इसे भी लोग पूनिया कहने लगे थे, तो पूनिया सेठ यानि शशिचंद्र चला जाता है।

एक नदी किनारे रुका, भूख भी लगी थी, प्रात:कालीन क्रियाओं से निवृत्त हुआ, सोचा भोजन कैसे बनाऊँ। तभी सामने एक तम्बू पर डेरा डला दिखाई दिया। वहाँ पहुँचा तो पता चला कि वहाँ कोई सेठ

ठहरा हुआ है। उस सेठ के यहाँ बहुत कर्मचारी थे। भोजन बन रहा था, वह सेठ भोजन के लिये तैयार हुआ उससे पूर्व उसने सोचा कि पहले मैं किसी मुनि का पड़गाहन करूँ। इतने में ही शशिचन्द्र पहुँच गया और सेठ के कर्मचारियों से कहता है–भाई तुम्हें कोई हर्ज न हो तो मेरे

इन दाल-चावल की खिचड़ी बना दो मैं भी अपना पेट भर लूँगा, नहीं तो मुझे अलग से चूल्हा बनाकर अपनी व्यवस्था करनी पड़ेगी, मुझे बहुत समय लग जायेगा। यदि आप अपने यहाँ बना दोगे तो आपकी बहुत कृपा होगी।

सेठ भद्र परिणामी था, कर्मचारी भी भद्रपरिणामी थे। उन्होंने कहा ठीक है-हम बना देते हैं और उसके दाल चावल लेकर छोटी सी भगोनी में खिचड़ी बनाना प्रारंभ कर दिया। 10 मिनट में थोड़ी सी वह खिचड़ी बनकर तैयार हो गयी। इधर सेठ-सेठानी और सभी सहयोगी पड़गाहन करने को तैयार हो गये। जंगल में कहाँ से कोई मुनिराज आये किन्तु उसकी भावना थी, मैंने सदैव किसी न किसी त्यागी व्रती को भोजन देकर ही आहार किया है। आज मेरा ऐसा कोई पाप का उदय नहीं हो सकता कि मैं किसी त्यागी व्रती को भोजन न कराऊँ।

वह भावना भा रहा है तभी आकाश मार्ग से दो चारण ऋद्धिधारी मुनि महाराज आ गये, अमितगति और अमिततेज नाम के मुनिराज आहार चर्या के लिये आये। सेठ ने बड़े गद्गद् मन से उनका पड़गाहन किया, उसको इतना आनंद आया मानो सूर्य चन्द्रमा ही उसके घर पर आ गये हों। ऐसा लगा नवनिधि और चौदह रत्न दोनों एक साथ उसके घर पर आ गये हों। ऐसा लगा धर्म-मोक्ष दोनों पुरुषार्थ एक साथ आ गये हों। आहार देने को तैयार हुआ तभी देखता क्या है कि जितने भी व्यंजन बने थे मुनिराज का सबका त्याग। संयोग की बात खिचड़ी का आहार स्वीकार किया और ग्रहण कर दोनों मुनिराज चले गये।

अब वह सेठ सोचता है महाराज ने मेरे यहाँ का तो सिर्फ पानी लिया, और कुछ भी नहीं लिया। इधर वह शशिचंद्र बहुत खुश हो गया कृतकृत्य हो गया। शशिचन्द्र जब जाने लगा तो सेठ ने उसे पकड़ लिया, भाई तू बिना भोजन किये नहीं जायेगा। उसने कहा-अब कैसा भोजन ? मैंने तो अपनी खिचड़ी मुनिराज को दे दी इससे बड़ा मेरा पुण्य क्या हो सकता है? पर अफसोस है कि मैं अपने हाथ से नहीं

दे पाया। तो वह सेठ कहता है तू भोजन न करेगा तो मैं भी भोजन नहीं करूँगा, तू हमारा अतिथि है और तू इतना पुण्यात्मा है कि तेरी खिचड़ी का आहार मुनिमहाराज ने लिया। जबरदस्ती उसे वहाँ बिठाया और भोजन करया। वह शशिचंद्र भोजन करके बड़े उत्साह के साथ महेन्द्र पुर के लिये रवाना होता है।

वहाँ के राजा महीदत्त के पास पहुँचा-जाकर देखा तो बहुत लंबी लाइन लगी थी, कोई अपनी वस्तु गिरवी रख रहा कोई अपना पुण्य। इसका नंबर भी आया-राजा ने पूछा-क्या बात है? इसने कहा-मैं अपना पुण्य गिरवी रखने आया हूँ, ठीक है, एक पर्ची पर अपने पुण्य को लिखकर इस तराजू पर रखो। वह पर्ची लिखकर रखता गया, वह ऑटोमेटिक मशीन थी उसमें से आवाज आती है-तूने धर्मशाला बनवायी-अपने नाम के लिये बनवायी, तुझे नाम ख्याति मिल गयी। उसने पर्ची लिखी मैंने बाग-बगीचे लगवाये पुनः यही आवाज आयी, वह एक-एक करके सब चीज लिखता है किन्तु किसी भी पर्ची से पलड़ा नीचे नहीं झुकता।

राजा महीदत्त पूछता है भाई तुमने और कोई पुण्य किया है जो बिना नाम के हो और शुद्धभावना से हो। वह बोला-और कोई पुण्य तो मुझे याद नहीं आ रहा पर रास्ते में आते समय अब इसे पुण्य कहूँ या क्या कहूँ। मेरा अहोभाग्य कि मेरे पास जो खिचड़ी थी उसका आहार मुनिमहाराज ने लिया किन्तु मैं अन्य सारे व्यंजन खाकर आ गया, इसका पुण्य मुझे क्या मिलेगा? मैंने बस अच्छी भावना भायी थी।

राजा ने कहा पर्ची तो डाल दो हो सकता है तुम्हें तुम्हारी अच्छी भावना से पुण्य लग गया हो। कागज की पर्ची पर लिखा इससे कोई पुण्य लगा हो तो उसे मैं गिरवी रखता हूँ। तो पर्ची रखते ही पलड़ा जमीन से छू गया, पुनः सेठ ने दूसरे पलड़े पर सोने के 10 सिक्के रखे पलड़ा नहीं उठा, 100 रखे तब भी पलड़ा नहीं उठा, एक रत्न रखा

तब भी नहीं उठा, बहुत सारे रत्न रखे तब भी नहीं उठा, वह सोच रहा है इसका इतना पुण्य हो गया। महीदत्त ने पर्ची रखी कि मैं अपना पूरा कोष इस पर रखता हूँ तब भी पलड़ा नहीं उठा। अब वह अपने आसन से खड़ा होता है और शशिचंद्र को प्रणाम करता है-भईया ! तू तो बहुत पुण्यात्मा है तेरे पुण्य के आगे तो यह मेरा खजाना भी कम पड़ गया है, मैं तुझे प्रणाम करता हूँ। अब तो मैं तेरा पुण्य गिरवी नहीं रख सकता, तू कुछ पैसे मुझसे उधार ले जा और बाद में वापिस कर जाना।

वह धन लेकर घर पहुँचा। उसकी पत्नी ने कहा-मैंने कहा था ना पुण्य गिरवी रख कर आओ। वह बोला पुण्य कुछ था ही नहीं तूने मेरी आँखें खोल दीं। मैं इतने अंधकार में था कि मैंने इतना पुण्य किया इतनी धर्मशालायें, स्कूल, प्याऊ, कुयें आदि बनवाये फिर भी पाप का उदय क्यों आ गया। इन सबमें सत्यता यही थी कि मैंने पुण्य कुछ नहीं किया वह सब तो नाम के लिये किया था। हाँ जो तूने मुझे चावल दिये थे उसकी खिचड़ी बनाकर मैं खाता वह मुनिमहाराज की अंजुलि में गयी। वे मासोपवासी मुनिराज थे उनके द्वारा ली गई इतनी सी खिचड़ी का इतना पुण्य लग गया कि उसकी बराबरी महीदत्त राजा का खजाना भी न कर सका।

पुनः शशिचंद्र ने खूब व्यापार किया और महीदत्त राजा का धन मयसूद के वापस कर दिया। अब उसने खूब धन कमाया और अपने पिता से भी बड़ा सेठ बन गया। शशिचन्द्र और शशिकान्ता का पुत्र हुआ उसका नाम सुकांत रखा उसे राजश्रेष्ठी का पद देकर स्वयं जंगल की ओर सन्यास के लिये पिहितास्त्रव मुनि के पास चला जाता है और पत्नी भी सुव्रता नाम की साध्वी के पास जाकर सन्यास स्वीकार करती है। दोनों तपस्या करके सुगति को प्राप्त होते हैं।

शिक्षा:

कोई भी व्यक्ति यदि शुद्ध भावों से ख्याति पूजा, प्रतिष्ठा की भावना से रहित होकर के शुद्ध हृदय से, दया, करुणा का भाव रखते हुये किसी की सेवा करते हैं चाहे धन से, तन से, मन से उनके प्रति सेवा का भाव रखते हैं तो दिया गया एक ग्रास भी एक लोक का राज्य देने में समर्थ होता है। तीन ग्रास भी दे दिये तो तीन लोक का राज्य मिल सकता है। तो जो व्यक्ति तपस्वी साधकों की, तपस्वी महात्माओं की सेवा, पूजा अथवा आहारादि देते है, नि:स्वार्थ भावना से उनके प्रति समर्पण करते हैं उन्हें स्वर्ग का, मनुष्य भव का राज्य प्राप्त होता है परम्परा से मोक्षलाभ भी प्राप्त करते हैं तो आप सभी भी तपस्वियों की सेवा करो, कभी भूलकर भी उनकी निंदा न करो, अविनय न करो, उपहास मत उड़ाओ, उनका जितना अधिक सम्मान करोगे उतने ही सम्मानीय पूज्य तुम बनते चले जाओगे।

२२

कल्याणदायी मंत्र

भारतवर्ष का एक छोटा सा देश जिसका नाम था चेदि। मध्यभारत के समीप में ये देश जिसमें प्रभास नाम का नगर था, जहाँ राजा धरणीधर राज्य करता था, इसकी धर्मवत्सला रानी का नाम था पद्मावती। इसी नगर के समीप में एक छोटा सा स्थान था जिसका नाम था कुन्दनपुर। यहाँ पर एक वैश्य था जिसका नाम था भानुदत्त। उसकी निष्ठावान्, आज्ञाकारिणी, मनोहारी एवं धर्म से अनुस्यूत पत्नी का नाम था विमला। वह बचपन से ही साध्वियों की सेवा में रही और धर्म के संस्कारों को प्राप्त किया। इसने कर्म सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण आगम ग्रंथों का अध्ययन गुराणी के मुख से किया। अध्यात्म विद्या को भी अपने जीवन में आत्मसात् किया इसीलिए इसकी जीवन चर्या में धार्मिक कर्त्तव्यों का समावेश था। गरीबों के प्रति दया-करुणा का भाव, परोपकार की भावना, साधु-सन्तों के प्रति करुणा का, श्रद्धा भक्ति का भाव इसके साथ-साथ अपने व्रत-नियम यम, संयम का पालन करती रहती।

भानुदत्त का स्वभाव विमला के स्वभाव से बिल्कुल विपरीत था। विमला साधुओं, त्यागीव्रतियों को बिना आहार दिये भोजन नहीं करना चाहती थी, तो भानुदत्त किसी को एक दाना भी नहीं देना चाहता था। उसकी प्रवृत्ति जितनी संयमी थी भानुदत्त की उतनी ही असंयमी।

एक बार बहुत दीर्घ काल हो गया विमला किसी मुनिराज को आहार न दे सकी। वह बहुत दिन से भावना भा रही थी कि कोई मुनिराज हमारे यहाँ आयें। एक दिन घर में पकवान बने थे, विमला का मन तीव्र उत्कंठित हुआ मैं साधु को आहार करा कर ही भोजन करूँगी। उसके पुण्य के उदय से नगर में चर्या हेतु एक अजितंजय नाम के मुनिराज आये, उनको आहार कराया, संयोग की बात उस वक्त

भानुदत्त घर पर नहीं था विमला उसकी दोनों बेटी और बेटा घर पर थे। दोनों पुत्री काव्यश्री, सौम्यश्री, बेटा अमितप्रभ तीनों ने ही आहार दान की अनुमोदना की।

मुनिराज जंगल की ओर चले गये, तब तक भानुदत्त का प्रवेश हुआ। उसने देखा जमीन पर कुछ पानी गिरा है, कुछ अन्न के कण भी पड़े हैं। पूछा-ये सब किसने गिराया। बच्चों ने खुशी से बताया-आज तो हमारे यहाँ मुनि का आहार हुआ था। वह बोला-ठीक है मुनि आये, आहार लिया कोई बात नहीं किन्तु यहाँ गिराकर, फैला कर क्यों गये। विमला ने समझाया मुनिराज हाथ से अंजलि बनाकर लेते हैं तो पानी भी गिरता है, अन्न भी गिर सकता है। वह बोला मैं नहीं मानता, मैं तो उन मुनिराज से हिसाब-किताब करके आऊँगा कि भोजन किया तो कोई बात नहीं इतना नीचे गिरा कर क्यों आये, मैं वसूलने जाता हूँ।

पत्नी ने खूब समझाया किन्तु वो नहीं माना। वह जाकर देखता है किसी गुफा में महाराज साधना कर रहे हैं जाकर पूछा महाराज श्री! अभी आप मेरे घर से आहार लेकर आये हैं, आहार लिया कोई बात नहीं भूखे को भोजन देने में मैं संकोच नहीं करता किन्तु आप गिरा कर क्यों आये। मुनिराज बोले बेटा दिगम्बर साधु थाली में भोजन नहीं करते अंजलि में लेते हैं तो गिर भी सकता है। मुझे नहीं पता-मुझे तो अपना पैसा वसूल करना है-वह सेठ बोला। मुनिराज ने जाना ये निकट भव्य है अल्पकाल में ही अपना कल्याण कर लेगा इसलिये इसको समझाना जरूरी है। उन्होंने कहा-बेटा ठीक है कोई बात नहीं, तुम क्या चाहते हो? वह बोला जो आपने गिराया मुझे उसका पैसा चाहिये। मुनिराज ने कहा-तुम देख तो रहे हो मेरे पास एक पिच्छी कमण्डलु है, मैं तुम्हें क्या दूँ। बोला आपके भक्त तो होंगे उनसे दिलवाओ। जब वह नहीं माना तो मुनिराज बोले-ठीक है मैं यहाँ के राजा के नाम एक चिट्ठी लिख देता हूँ तू वहाँ से पैसा ले लेना।

मुनि महाराज अवधिज्ञानी थे, उन्होंने अपने ज्ञान से जान लिया कि राजा धरणीधर की रानी पद्मावती गर्भवती है उसकी प्रसूति का काल निकट है वह अभी कष्ट को प्राप्त हो रही है, उसके और उसके

गर्भस्थ शिशु दोनों के ही प्राण संकट में है, इस मंत्र से उन दोनों का भला होगा, तो इसे पुरस्कार मिलेगा। मंत्र कागज पर लिख दिया "ॐ नमः सिद्धेभ्यः"। वह पत्र लेकर भानुदत्त चला गया, राजा के पास पहुँचा-और कहने लगा पद्मा कहाँ है? अरे पद्मावती तो महारानी का

नाम है और ये ऐसे कैसे नाम ले रहा है। राजा ने अपने पास बुलाया-तब उसने बताया मुनि महाराज ने पत्र दिया है। राजा कहने लगा मेरी रानी मुनिराज की भक्त है, मुझे दिखाओ उन्होंने कौन सा पत्र दिया है। वह बोला नहीं मैं आपको नहीं दूँगा। राजा ने कहा ठीक है-उन्होंने दासियों के द्वारा वह पत्र पद्मावती के पास भिजवा दिया।

पद्मावती ने वह पत्र पढ़ा उसमें लिखा हुआ था ॐ नमः सिद्धेभ्यः। मंत्र पढ़ते-पढ़ते उसकी प्रसूति बहुत शांति से हुयी दोनों माँ व संतान के प्राण बच गये। एक पुत्र को उसने जन्म दिया, समाचार मिलते ही चारों ओर प्रसन्नता की लहर आ गयी। रानी ने राजा से कहा जो पत्र में मंत्र लिखा था उसको पढ़ने से मेरा कष्ट दूर हो गया बालक भी बच गया मेरी इच्छा है कि उस पत्र वाहक को इनाम दिया जाये। राजा ने भानुदत्त को बुलाया और इनाम दिया। राजा ने उसे 10 हजार सोने की अशर्फियाँ दी, वह बोला नहीं इतना नहीं लोभी तो था ही। राजा ने कहा- 1 लाख ले लो बोला नहीं, 10 लाख ले ले फिर भी बोला नहीं। तब राजा ने कहा-मैं आधा राज्य तुझे देता हूँ तो कहता है ठहरो अभी-मेरा पत्र वापस कर दो पहले मैं मुनिराज के पास वापिस जाता हूँ फिर आकर बताता हूँ।

वह जंगल में मुनिराज के पास जाता है और कहता है मुनिराज एक बात बताओ आप तो सब जानते ही हो, जब आपने पत्र पर लिखा ही था तो 10 हजार अशर्फी या 1 लाख अशर्फी या आधा राज्य ही क्यों लिखा, लिखना था तो पूरा राज्य ही लिख देते, मैं नहीं लेता आधा राज्य। मुनिमहाराज बोले अगर पूरा राज्य चाहिये तो तुम्हें मुझ जैसा बनना पड़ेगा। वह कहता है ठीक है बन जाऊँगा वे बोले ऐसे नहीं पहले अपनी पत्नी बच्चों से पूछकर आओ-वह गया, पूछा मुझे पूरा राज्य चाहिये मैंने उन गिरे दानों की कीमत वसूल की तो उन्होंने मुझे आधा राज्य दिया। राजा का आधा राज्य मैं ले लेता तो हम दोनों में झगड़ा होता, इसलिये फिर महाराज से मैंने कहा तो वे बोले

पूरा राज्य पाने के लिये तो उन जैसा बनना पड़ेगा, तुम घर में चैन से रहना मैं घर में बाद में आऊँगा।

पत्नी समझ गयी कि मुनिराज ने इनको आसन्नभव्य जानकर कल्याण की भावना से सब कहा है-वह जाता है और दीक्षा ग्रहण कर लेता है तपस्या करते हुये आगम ग्रंथों का अध्ययन करते-करते आत्मा का बोध हो गया, वह खूब तपस्या करता है और तपस्या करके स्वर्ग के वैभव को प्राप्त करता है।

एक छोटे से मंत्र के माध्यम से भानुदत्त सेठ का उन अजितंजय नाम के मुनिराज ने कल्याण कर दिया। ऐसे हम भी यदि किसी मुनिमहाराज की सन्निधि में पहुँच जाते हैं, उनकी सेवा करते हैं तो हम भी उसी प्रकार के आत्म वैभव को प्राप्त कर सकते हैं। उसकी जो पत्नी विमला वह भी मुनिराज को आहारदान देने से पुण्य कमाती है और उसी स्वर्ग में जहाँ भानुदत्त देव हुआ था उसकी देवांगना बन जाती है उसका बेटा और पुत्री भी आहारदान की अनुमोदना से उसी स्वर्ग में देवत्व को प्राप्त होते हैं।

शिक्षाः

एक छोटा सा मंत्र हमारी आत्मा का कल्याण करने में समर्थ होता है। बहुत बड़े-बड़े मंत्र हम नहीं जप पायें तो निरंतर हमें उठते-बैठते "ॐ नमः सिद्धेभ्यः" मंत्र का जाप करना चाहिये। इससे सभी कार्य सिद्ध होते हैं ये मंत्र सभी का कल्याण करने वाला है, यह मंत्र किसी जाति विशेष, धर्म विशेष के लिये नहीं है ये प्राणीमात्र का कल्याण करने वाला है। चाहे कोई व्यापारी हो, विद्यार्थी हो, अमीर हो, गरीब हो, कोई भी हो सबका कल्याण करने वाला है यथा योग्य आप सभी को यह पढ़ना चाहिए।

२३

तिमूढा-तिगोड़ा

इस भरतक्षेत्र में छः खण्ड हैं, एक आर्य खण्ड पाँच म्लेच्छ खण्ड। आर्य खण्ड में भारत देश जैसे अनेक देश शोभित हैं, भारत देश भी पहले छोटे-छोटे देशों में विभक्त था, जैसे-अंग, बंग, कलिंग, अवध, कुरुजांगल, सौराष्ट्र, चेदि, चेल, कर्नाटक, काम्पिल्य, दशार्ण इत्यादि। इनमें से एक देश था 'मालव देश'। यहाँ पर धान्यपुर नाम का एक नगर था उस नगर में एक किसान रहता था, जिसका नाम दयामित्र था, उसकी पत्नी का नाम गुणवती था, दोनों ही बड़े संतोषी प्राणी थे, संस्कारवान् थे और उनके जीवन में कोई लोभ-लालच विशेष रूप से नहीं था। धर्म ध्यान करते हुये उनके घर में चार बच्चे हुये, संयोग की बात ये थी कि वे चारों पुत्र थे। जिस घर में कन्यायें नहीं होती तो दया भाव कुछ कम पाया जाता है, कन्याओं के होने से तो प्रेम का प्रवाह ज्यादा होता है, बहिन-भाई घर में होते हैं, लड़ते-झगड़ते हैं तब घर का अलग ही माहौल होता है। कन्या माता-पिता का सुख-दुःख देखकर सभी भाईयों में प्रेम-वात्सल्य बनाये रखती है।

दयामित्र के चार पुत्रों के नाम क्रमशः श्रीपाल, देवपाल, विजयपाल और अमरपाल थे चारों पुत्रों को उनके पिता ने उत्तम शिक्षा दिलाने का पुरुषार्थ किया। जब तक वे छोटे थे तब तक तो पिताजी की आज्ञा का पालन कर शिक्षा ग्रहण की बाद में जब बड़े हुये तो लड़ते झगड़ते उनका पढ़ाई में मन नहीं लगा। दयामित्र धर्मात्मा था, संतोषी था इसीलिये घर में धन आदि किसी भी प्रकार की कमी नहीं थी, उसका नाम न सिर्फ खुद के नगर में अपितु आस-पास के नगरों में भी यश को प्राप्त था, उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी।

उसने अपने बच्चों को आजीविका के लिये बहुत सारे कार्य कराना चाहे, किन्तु वे आलसी और निठल्ले थे काम करना ही नहीं

चाहते थे। दयामित्र की बहुत अच्छी दुकान चलती थी, जब वह वृद्ध हुआ तो उसके पुण्य से दुकान नौकरों के द्वारा चलती तब भी घर में कोई कमी नहीं थी। जब वह मृत्यु शय्या पर पहुँच गया उसे लगा कि

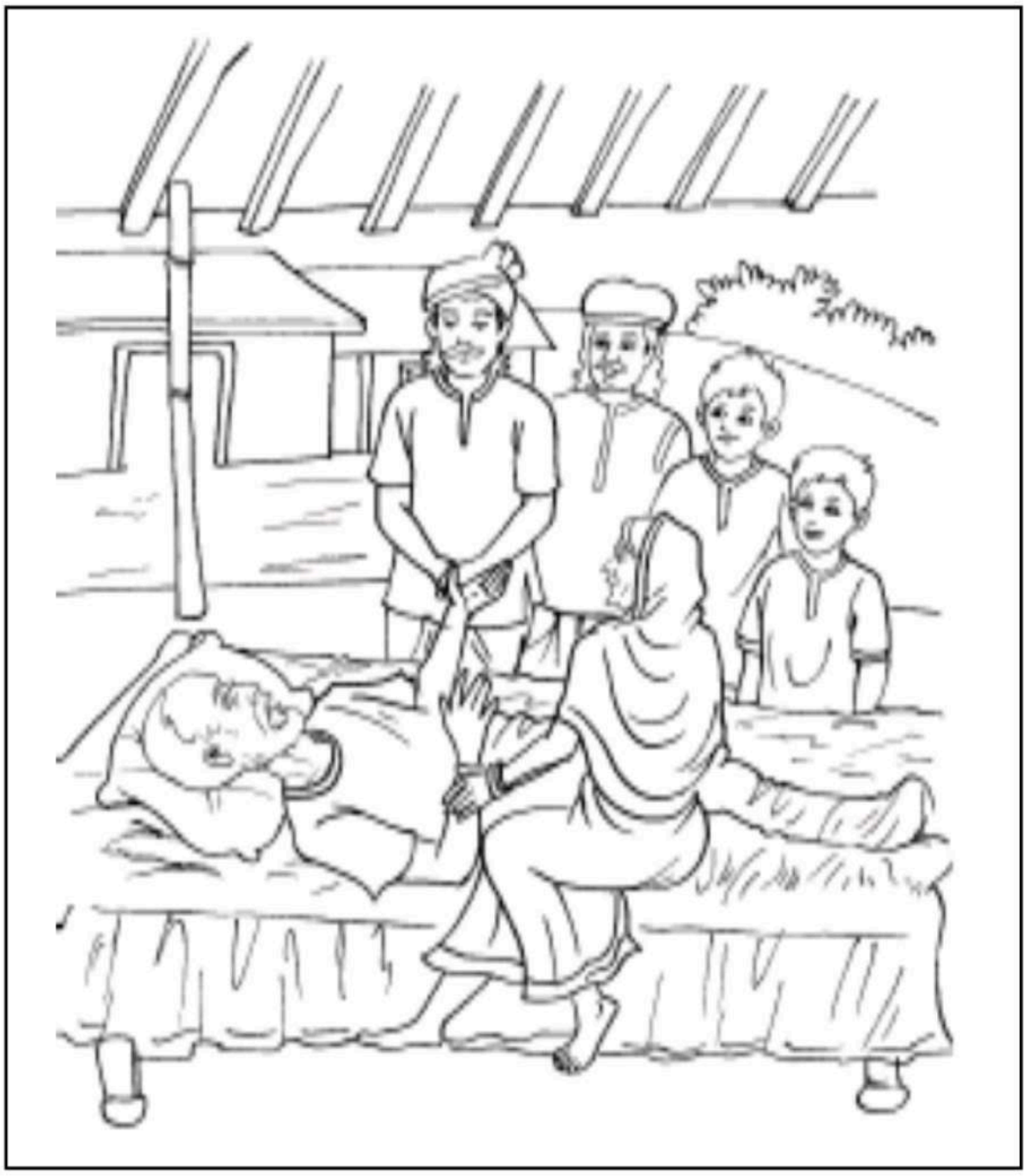

मृत्यु समीप में है तब उसने अपने चारों बेटों और पत्नी को बुलाया और समझाया-मेरा अंतिम समय अब निकट है। बच्चों ने आँसू भरकर कहा-पिताजी आप चले जायेंगे तो हम अनाथ हो जायेंगे, हम कुछ करना नहीं जानते हमारा क्या होगा। तो उनके पिता ने अंत में उन्हें उपदेश दिया कि इन सब बातों को सदैव ध्यान में रखना-

1. बेटा ! आप छाँव में जाना छाँव में आना।

2. गाँव-गाँव में घर बनाना।

3. सदैव मीठा खाना।

4. देकर के कभी उसके पास माँगने नहीं जाना।

5. यदि धन की आवश्यकता पड़े तो वैशाख सुदी तीज के दिन 11:35 पर शिखर खोदकर निकाल लेना।

बच्चे बोले ठीक है पिताजी और अन्त में कहा कि इन बातों से तुम्हारी आजीविका सुखपूर्वक चले तब तो ठीक है यदि इन बातों को मानते हुये अंत में कुछ प्रतिकूलता होती है तो अंत में सलाह लेने के लिये किसी तिमूढ़ा-तिगूढ़ा के पास चले जाना।

यह सब कहा और दयामित्र अपनी पत्नी और बच्चों के सामने सदैव के लिये चिरनिद्रित हो गया। दयामित्र की मृत्यु के उपरांत अंतिम संस्कार किये। गुणवती के रहते हुये सभी बच्चों का वही हाल था, किन्तु माँ के समझाने पर उन्हें अहसास हुआ और सोचने लगे-पिताजी ने हमें जिंदगी भर समझाने का प्रयास किया किन्तु हम शरारत करते रहे, पर अब जो पिताजी ने अंत समय में शिक्षायें दी हैं उन शिक्षाओं को अपने जीवन में अंगीकार करें।

पहली शिक्षा थी-''छाया में आना छाया में जाना''। तो उन्होंने घर से लेकर दुकान तक चाँदनी लगवा दी, इससे छाया में आते थे और छाया में जाते। बहुत पैसा खर्च हुआ उसको लगवाने में, वह शमियाना 2-4 दिन चलता और फट जाता। वे फिर लगाते किन्तु वह ज्यादा नहीं चला। फिर उन्हें पिताजी की दूसरी शिक्षा याद आयी-''गाँव-गाँव में घर बसाना''-इसके लिये उन्होंने आस-पास के जो गाँव थे वहाँ 2-4 जगह जमीन लेकर घर बनवाये जिससे बहुत सारी सम्पत्ति वहीं खर्च हो गयी। अब तीसरी शिक्षा जो पिता जी ने दी थी-''खूब मीठा खाना'' उन्होंने घर में खूब पकवान बनवाये,

जमीन-जायदाद खत्म हो गयी, दुकान भी कम चल रही थी फिर भी घर में खूब मीठा खाते, सम्पत्ति और नष्ट होती चली गयी। उन्होंने सोचा अगली शिक्षा और मान लें शायद फायदा ही हो जाए। देकर के मांगने नहीं जाना-तो वे क्या करते दुकान पर जो ग्राहक पैसे सामान के बदले दे जाता तब तो ठीक और जिसने नहीं दिये उससे मांगते ही नहीं। तो ये क्रम चलता रहा-चारों बातों को बच्चों ने खूब सोच-सोच कर किया, नतीजा ये हुआ कि अब तो उनके पास खाने के भी लाले पड़ गये।

इसी बीच अचानक गुणवती ने भी मध्यरात्रि में कब अंतिम श्वांस ले ली ये उन्हें ज्ञात भी नहीं हुआ। और उन्होंने अपनी माँ के संस्कार किये, चारों के विवाह भी हो चुके थे किन्तु घर में हालात एकदम खराब थे। उन्हें पिताजी की पाँचवी शिक्षा याद आयी। वैशाख का महीना आ गया तीज के दिन मंदिर के शिखर पर नियत समय 11:35 पर चढ़े वहाँ छेद कर दिया किन्तु धन नहीं मिला, बेचारे बहुत परेशान गाँव के लोग उनकी हँसी उड़ाने लगे। जिस दयामित्र की बहुत प्रतिष्ठा थी, सम्मान था आज पिता को गये 2-3 साल हुये हैं और उसके बच्चे गरीब-भिखारियों की तरह से घूमते दिखायी देते हैं, किन्तु जैसे तैसे काम चल ही रहा था।

अब उन चारों ने सलाह की कि हम सलाह लेने तिमूढ़ा-तिगूढ़ा के पास जायेंगे। पिताजी हमें गलत शिक्षा नहीं दे सकते, जिन शिक्षाओं का पालन करने से हम गरीब हो गये, लगता है हमने पिताजी की शिक्षाओं का सही अर्थ नहीं निकाला, इसीलिये वे चारों के चारों नगर में घूमने लगे और तिमूढ़ा-तिगूढ़ा को ढूंढने लगे। ढूंढते-ढूंढते जंगल पहुँचे, लोग उन्हें पागल कहने लगे। गरीबी के कारण ये सब पागल हो गये हैं, बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी है जंगल में देख रहे हैं कहीं तिमूढ़ा-तिगूढ़ा मिल जाये। जंगल में बहुत दूर से देखने पर एक पहाड़ी की चोटी पर घने वट वृक्ष की छाया में-तीन

सिर जैसे दिखाई दिये-चारों भाई एक साथ चिल्लाए देखो वह बैठा है। दौड़कर चारों उसके पास गये। अरे ! अपना माथा ठोका-अरे ये नहीं है, इसके तो दो ही सिर हैं, उस व्यक्ति ने सुना और कहा-क्या कहते

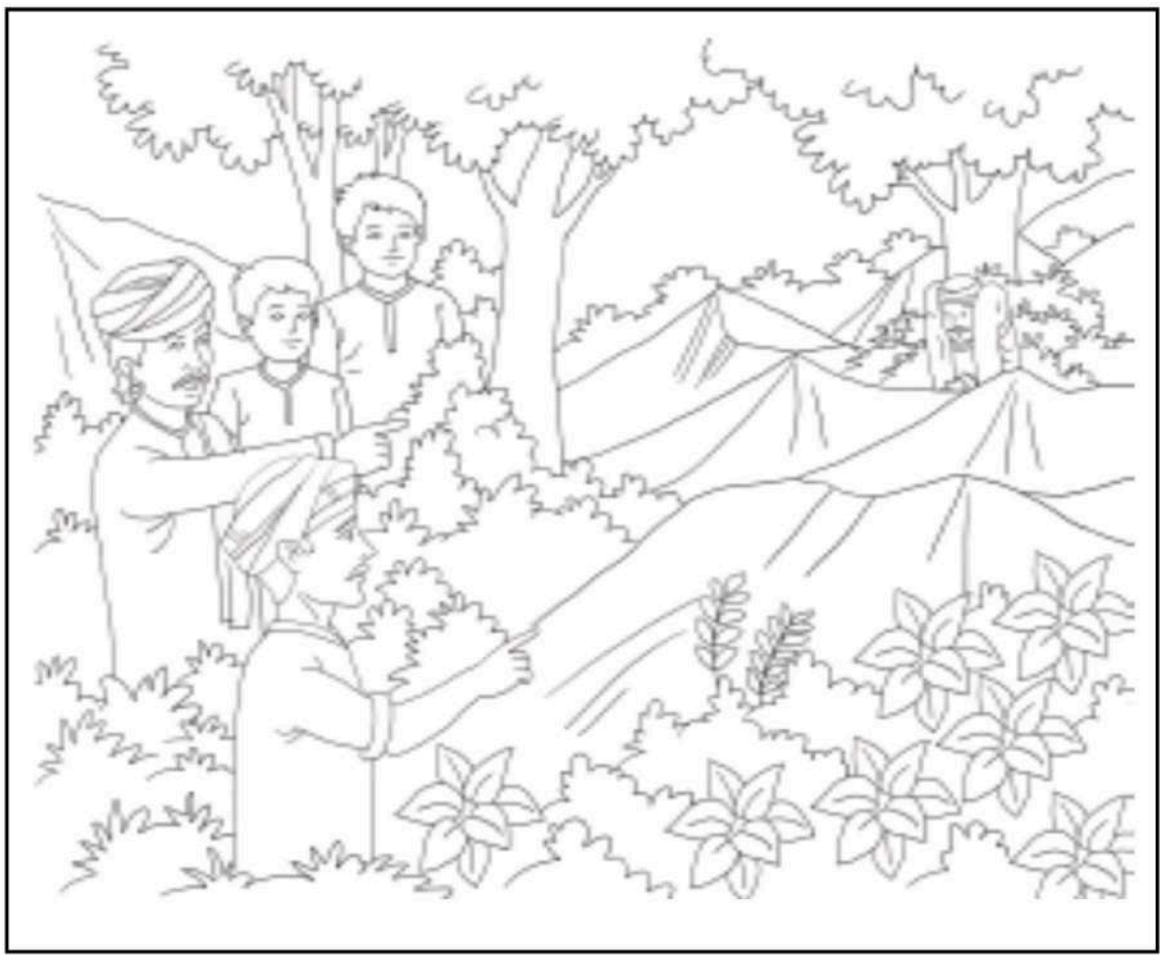

हो? वे बोले-हाँ बाबा जी हम यहाँ दौड़कर आये पर अब जा रहे हैं। पूछा क्यों? बोले बात ये है कि हमने दूर से ऐसा देखा लिया था कि आपके तीन सिर दिखाई दे रहे हैं।

वह वृद्ध व्यक्ति बोला हाँ बेटा ! तुमने सही पहचाना। बेटा-तिमूढ़ा-तिगूढ़ा मैं ही हूँ। वे बोले बाबा जी हम समझे नहीं कि आप कैसे ? वे बोले-बेटा देखो जैसे मैं बैठा हूँ सिर को दोनों घुटनों के बीच में लगाकर इससे तुम्हें भ्रम हो गया था, क्योंकि मेरे सिर पर अब बाल भी नहीं रहे। तो सिर और घुटनों को दूर से देखकर तुम आ गये, ये तो हुआ तिमूढ़ा, और खड़े होने पर दो पैर और एक मेरी लाठी-यह कहलायी तिगूढ़ा-ठीक है दादाजी।

चारों ने अपनी आप-बीती कहानी उनसे कह सुनायी। पिताजी की शिक्षाओं के विषय में सब बताया। बाबा जी कहने लगे-बेटा अगर तुम कहीं किसी युवा से सलाह लेते तो वह तुम्हें भ्रमित कर देता। मैं तुम्हें बताता हूँ कि तुमने अपने पिता जी की शिक्षाओं का सही अर्थ कैसे नहीं निकाला-उनकी पहली शिक्षा थी-छाया में आना, छाया में जाना-अर्थात् तुम किसी की छत्र छाया में रहना, अपना कोई बड़ा मान कर चलना, जिसकी बात तुम मान सको, जिसकी आज्ञा का पालन कर सको, जिसका डर रहे, जो तुम्हें संभाल सके। जब बड़े की छत्र छाया रहती है तो व्यक्ति दु:खों को प्राप्त नहीं होता। इस बात का दूसरा मतलब ये भी था कि आप दुकान पर जब जायें तो सूर्योदय से पूर्व ही चले जायें, और शाम को सूर्यास्त पर लौटना-इस प्रकार छाया में आना-जाना उनके कहने का मतलब था।

दूसरी बात उन्होंने कही-'गाँव-गाँव में घर बसाना' अर्थात्-तुम्हारी दुकान पर बाहर के गाँवों के कई छोटे-बड़े व्यक्ति आते हैं। ग्राहकों से ऐसा मित्रवत् व्यवहार करना कि जब तुम उनके गाँव में जाओ और उनसे पूछो कि ये किसका मकान है तो वे कहें कि सेठ जी ये तो आपका ही मकान है। ऐसा मिष्ट और शिष्ट व्यवहार करना जिससे गाँव-गाँव में हर घर ही तुम्हारे घर हो जायेंगे, तुम जब भी जाओगे तुम्हें सम्मान मिलेगा।

तीसरी बात उन्होंने बतायी 'मीठा खाना' अर्थात्-जो व्यक्ति धैर्य धारण करके खाता है वह मीठा खाता है, अथवा पथ्य रूप सामग्री खाता है वह मीठा खाता है। जो अपथ्य है, रोगजनक है, वह नहीं खाना। पापबंध कराने वाली चीजें नहीं खाना। मीठी चीज वह लगती है जो स्वास्थ्य वर्धक हो। उनके कहने का आशय पकवान खाने से नहीं था-मीठा अर्थात् सदैव मीठे वचन बोलो जिसको सुनकर दूसरों का मन भी मीठा हो जाये। कटु वचन मीठे भोजन को भी कड़वा कर देते हैं।

अगली बात जो पिताजी ने कही-देकर मांगने नहीं जाना-इससे उनका आशय यह था कि किसी भी व्यक्ति को यदि उधार सामान

देना है तो पहले उसकी कोई वस्तु अपने पास रख लो, या उससे नगद लो, यदि नगद नहीं लाया तो उसकी कोई सोने-चांदी की वस्तु ले लो। कोई व्यक्ति 500-हजार का सामान ले तो दो हजार की वस्तु उसकी अपने पास रख लो यदि वह नकद न दे तो। वह व्यक्ति तुम्हारे पास स्वयं चक्कर लगायेगा। तुम्हें बार-बार उसके पास मांगने नहीं जाना पड़ेगा।

हाँ दादाजी पिता जी का यही आशय होगा हम समझ ही नहीं पाये कि वे क्या समझाना चाह रहे थे। अब रही बात धन की-तो इसके लिये हमने वैशाखसुदी तीज के दिन शिखर पर जाकर देख लिया, वहाँ पर तो कोई धन नहीं है। पिताजी ने कहा था चार कलश रखे हैं उनमें सोने के सिक्के आदि भरे हैं, तो वे बोले-बेटा-तुम्हारे पिता जी के कहने का मतलब ये है कि वैशाख के महीने में शुक्लपक्ष की तृतीया के दिन सूर्य 11:35 मिनट पर जहाँ होता है उस समय शिखर की छाया जहाँ पड़ रही हो वहाँ पर खोदना है। तो वहाँ घड़े मिलेगें। पुत्रों ने देखा की वैशाख सुदी तीज के दिन 11:35 पर शिखर की छाया उनके घर के आँगन में पड़ रही थी। वहाँ उन्होंने खोदकर देखा तो चार कलश मिले उनमें धन स्वर्ण आदि रखा था, उस धन के माध्यम से उन्होंने अपने बिगड़े हालातों को व्यवस्थित किया, दशांश धन को धर्म में निकाला। वे चारों बड़े ही प्रेम से रहने लगे, दुकान व्यापार में खूब मन लगाकर कार्य किया पिता की साख पुनः बनायी, प्रतिष्ठा प्राप्त की और सुखपूर्वक रहने लगे। बाद में चारों ने गृहस्थ आश्रम पूर्ण कर सन्यास के मार्ग को स्वीकार किया।

इस प्रकार दया मित्र ने अपने बच्चों को जो शिक्षायें दी वे शिक्षायें यदि आप सभी भी स्वीकार करें, उनका सही अर्थ निकालें तो हो सकता है आप सभी भी सुखी जीवन जी सकें।

शिक्षाः

सुसंस्कारवान् व्यक्ति विपत्ति काल में भी अपने सम्मानीय व पूज्यनीय माता-पिता व गुरुजनों के सुसंस्कारों के बल से धैर्य को धारण कर सफलता को प्राप्त कर लेता है।

२४
होनहार होके रहे

प्रहलादपुर नाम का कस्बा था। पहले जमाने में छोटे-छोटे राजा होते थे, जमींदार होते थे, सामंत होते थे। सामंत और जमींदार भी एक प्रकार से छोटे-छोटे राजा कहलाते थे। वे भी अपने उस स्थान के मुखिया माने जाते थे। उस देश के प्रहलादपुर नगर के मुखिया जिसका नाम नील कुमार था। जिसे बचपन में प्यार से सभी लोग 'निल्ल' कहते थे। वह जब योग्य हुआ तब उसके पिता ने उसका विवाह प्रभावती नाम की कन्या से किया। माता-पिता अपने योग्य पुत्र को उस गाँव का सामंत बनाकर सन्यास पथ पर चले गये।

वहीं गिरीनगर में एक और राजा था। यह वही गिरीनगर है जहाँ कहा जाता है जैनों के 22वें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ ने मोक्ष को प्राप्त किया था, जिसे आज गिरिनार पर्वत कहते हैं। उस गिरीनगर का सामंत जिसका नाम था 'पीलकुमार'। वैसे तो उसका नाम महानील था पर लोग उसे पील या प्यार से 'पिल्ल' कहते थे। नील और पील इन दोनों की आपस में बड़ी मित्रता थी निल्ल-पिल्ल बचपन से ही साथ-साथ खेले। किन्तु बाद में अलग-अलग राज्यों को संभाला। पील कुमार की सहधर्मिणी का नाम था पद्मिनी।

एक दिन नील-पील शिकार हेतु जंगल में गये, सुबह से शाम तक भटकते रहे किन्तु कोई भी शिकार नहीं मिला। रात को जब अपने नगर की ओर लौटने को हुये तो रास्ता भूल गये, न तो गिरीनगर जा सके और न ही प्रहलादपुर। उन्होंने रात्रि वटवृक्ष के नीचे जंगल में ही व्यतीत की। रात्रि व्यतीत हो गयी किन्तु नींद नहीं आयी, भय भी था। रात्रि के अंतिम प्रहर में कुछ आश्चर्यकारी चीज देखी।

जब वे रास्ते में जा रहे थे ऐसा लगा पगदंडी के सहारे एक बुढ़िया बैठी है, उस बुढ़िया को देखकर के उन्होंने सोचा, कि भूत है कि देवी है पिशाच है, कि तिर्यंच है। उन्होंने अपने हाथ से तलवार निकाली, वहाँ पहुँचे पूछा कौन है? तो बुढ़िया ने कहा-मैं वैमाता हूँ।

क्या करती है वैमाता ? वह बोली मैं जोड़ियाँ बनाती हूँ, किसका किसके साथ संबंध होगा। कौतुकवश नीलकुमार ने कहा-तू कैसी वैमाता है मेरा भी संयोग बना दे। बोली-अब तेरा संजोग नहीं बनेगा तेरी शादी हो चुकी है प्रभावती से और तू दुबारा शादी नहीं कर सकता। पील कुमार ने कहा-मेरा संजोग बना दो-तो उससे कहा-तेरा भी संजोग नहीं हो सकता तेरी भी शादी पद्मिनी से हो चुकी है। तो नील कुमार कहने लगा-देख वैमाता-तुझे संयोग तो बैठाना ही पड़ेगा नहीं तो इस तलवार से तेरे दो टुकड़े कर दूँगा। वह बोली-बच्चों तुम नहीं जानते जवानी के नशे में तुम क्या करने जा रहे हो, यह उचित नहीं है, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। पील कुमार ने कहा-परिणाम अच्छा हो या बुरा तुम्हें मेरे मित्र का संजोग बनाना ही पड़ेगा। वैमाता ने कहा-यदि ऐसी ही जिद करते हो तो जा तू अपनी ही बेटी के साथ पाप कमायेगा। ये शब्द श्राप रूप से उसे दे दिया।

वे दोनों वहाँ से चले नील कुमार ने कहा-हम देखते हैं बुढ़िया का वचन कैसे पूरा होगा, जब हम अपने बेटी ही नहीं होने देंगे। कुछ समय बाद प्रभावती को गर्भ ठहरा, संयोग से उसकी कुक्षि से कन्या ने जन्म लिया। कन्या बहुत सुंदर थी, उस कन्या को देख माता-पिता बहुत आश्चर्य चकित हुये। बाद में मंत्री, पुरोहित आदि ने कहा-ये कन्या आपके लिये शुभ नहीं है पुनः इस बात को सुनकर बुढ़िया की बात याद आ गयी। उसने कहा-ये कन्या बड़ी हो इस पर मेरा मन खराब हो, इससे पहले ही मंत्री आदि से कहा यह इस धरती पर जीवित नहीं रहनी चाहिए।

मंत्री आदि कन्या को ले गये किन्तु पुण्यात्मा व्यक्ति का कोई बाल भी बांका नहीं कर पाता। उन्होंने उस कन्या को मारा तो नहीं, अपने घर में भी नहीं रखा अन्यथा राजा फांसी की सजा देगा। इसके लिये वे उस कन्या को एक संदूक में रखकर घने जंगल में छोड़ आये। इधर पील कुमार वहीं रथ से जा रहा था। उसने जंगल में वह संदूक देखा, उठाया तो कन्या निकली, उस ने कन्या को अपनी पुत्री मानकर पद्मिनी से कहा-हम निःसंतान हैं आज भाग्यवश हमें यह कन्या रत्नस्वरूप प्राप्त हुयी है।

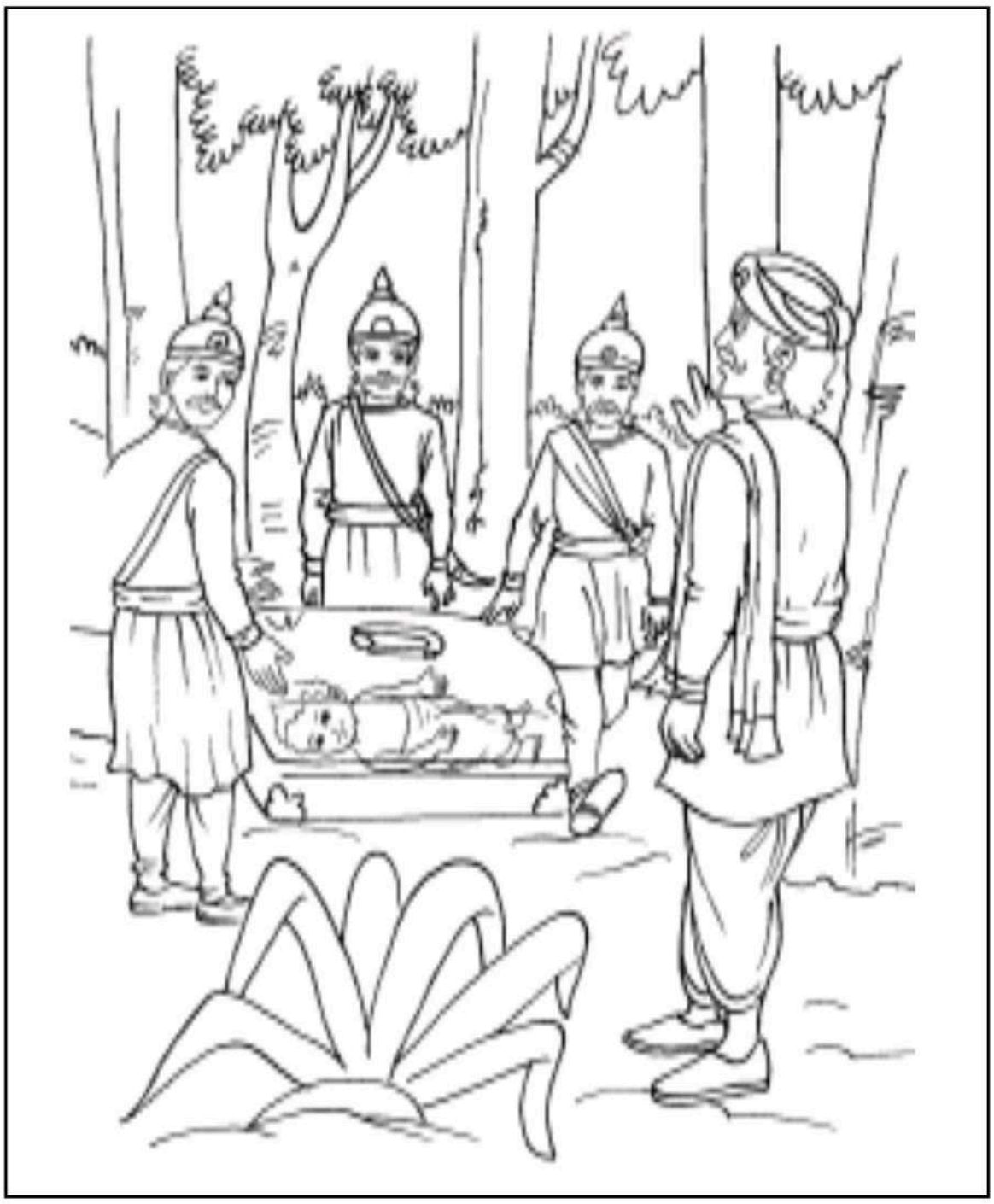

पील कुमार के यहाँ कन्या वृद्धि को प्राप्त होने लगी वह राजमहल में सभी की लाड़ली थी, चहेती थी, सभी उसको प्यार करते। धीमे-धीमे वह बड़ी होने लगी। बहुत सुंदर थी, उधर नील कुमार ने पूरे महल में यह खबर कर दी कि मृत पुत्र हुआ था। पील कुमार ने भी रहस्य रखते हुए यह खबर फैला दी कि उसके यहाँ कन्या का जन्म हुआ है। बाद में पील कुमार के अन्यपुत्रों का भी जन्म हुआ वह अपने भाईयों की बहुत चहेती बहिन थी पिता की भी

लाड़ली थी क्योंकि पील कुमार ने संकल्प लिया था जंगल में ही कि इस कन्या को सबसे ज्यादा प्यार दूँगा।

एक दिन वह कन्या अपने माता-पिता के साथ किसी महोत्सव में गयी। उधर उसी महोत्सव में राजा नील कुमार भी आया, नील-पील की आपस में भेंट हुयी। नील कुमार ने उस कन्या को देखा कि क्या कोई देव कन्या है। वह उसे देख मोहित हो गया। पील कुमार समझ गया कि मित्र के मन में क्या है। नील-पील में कुछ औपचारिक बातें हुयी पुनः नील कुमार अपने राजमहल लौट आये किन्तु जब से उस कन्या को देखा नील कुमार का मन अस्वस्थ था।

उधर वह कन्या जिसका नाम था 'सोरठ' उसके मन में भी जब से नील कुमार को देखा था सहज ही प्रेम उसके प्रति हो गया। पीलकुमार को जब पता चला कि मेरा मित्र विह्वल हो गया, या मेरी पुत्री का मन आकर्षित हुआ है तो उसने उन दोनों का रिश्ता पक्का कर दिया। नील कुमार पिल्लकुमार से छोटा था, रिश्ता जब पक्का हो गया तब नीलकुमार प्रहलाद पुर से बारात लेकर आ रहा था। रास्ते में बकरी और बकरे चर रहे थे। उसे देखकर बकरा बकरी आपस में संवाद करने लगे-

''बकरी से बकरा कहे, सुन बकरी मेरी बात ऐसे कलियुग ना भये, बिटियन ब्यावे बाप।''

ऐसा कलियुग नहीं देखा कि बेटी को स्वयं का बाप ही ब्याह कर ले जा रहा हो। नील कुमार ने देखा कि क्या कह रहे हैं। वे बकरी बकरा तो नहीं थे (थे तो कोई देवमाया ही) फिर आगे वे कुत्ता-कुत्ती के रुप में मिले, कहने लगे-

हे भगवान ! ऐसा किसी के साथ न हो यह तो महाअन्याय है पाप है। नील कुमार के बारातियों ने डंडा मारकर उन्हें भगा दिया-कुत्ता कुतिया से पूछने लगा-

क्यों कुतिया गुस-गुस करे क्यों रही अलख जगाय।
भोर होत घर-घर फिरे चार डणों का खाय॥

जब नील कुमार वहाँ पहुँच गये तो बहुत अपशकुन हुये, मुकुट गिर गया, ज्योतिष ने भी कहा ये विवाह पाप का कारण बनेगा लगन सही नहीं है। तब नील कुमार को याद आया जब कन्या जन्मीं थी तब नील कुमार ने देखा था उसके सिर पर एक निशान था, उस कन्या के सिर पर भी वही निशान देखा, तब बारात लौटा कर ले आता है-पश्चाताप करता है, मैंने ऐसा पाप किया कि बेटी को ही ब्याहने के लिए सिर पर मौहर रख कर आया। वह तो सन्यास ले लेता है और उसके पुत्र को उसकी पत्नी प्रभावती सामंत के योग्य बनाती है।

इधर-पील कुमार जिसने बात छिपा रखी थी, उसे भी ज्ञात हो गया कि बेटी नील की थी। अब समाधान कैसे करें, उसकी सुन्दरता की चर्चायें बहुत दूर-दूर तक फैली हुयी थी-गुर्जर देश वहाँ के राजा 'रौर' थे। वह बहुत पराक्रमी था, उसने भी -'सोरठ' के बारे में सुन रखा था, उसने अपने राज्य में कहा-जो सोरठ को मेरे पास ले आयेगा मैं उसको आधा राज्य दे दूँगा, किन्तु वहाँ तो कोई तैयार ही नहीं था। वहाँ एक उसका भांजा था जिसका नाम था खंगाल। उसने कहा मामा मैं इस कार्य को कर सकता हूँ। राज्य दरबार में बीड़ा रखा था, जो इस कार्य को कर सकता है वह यह बीड़ा चबाये। खंगाल ने वह-बीड़ा चबा लिया। उसे यथायोग्य रास्ते के लिये सब व्यवस्थायें दे दीं और वह चल दिया।

वह गिरी नगर पहुँचा और सोरठ तक पहुँच कर उससे चर्चा भी कर लेता है। सोरठ चलने को भी राजी हो जाती है किन्तु बाद में जाकर वह सोरठ को अपने घर ले जाता है। लोगों ने चर्चा शुरू कर दी देखो कन्या रौर को नहीं दी अपने पास ही रख लिया। खंगार ने समाचार भेजा कि कन्या मेरे पास है-खंगार और सोरठ में बहुत प्रीति हो गयी थी, किन्तु खंगार ने तो वह कन्या अपने मामा को दी थी।

रौर की और सोरठ की शादी भी हो गयी किन्तु सोरठ का नियम था जब तक मैं खंगार का चेहरा नहीं देखूँगी तब तक अन्न ग्रहण नहीं करूँगी। जब शादी हो गई भांजा कुछ दिन तो घर में रहा किन्तु बाद में रौर को शंका हो गयी, और उसने खंगार को भेज दिया। राजमहल

से निकल कर खंगार ने रूप बदलने की विद्या सिद्ध की वह रूप बदल कर कभी तोता, हंस, कौवा बनकर सुबह-सुबह आता सोरठ को अपना चेहरा दिखाता और उड़कर चला जाता था।

इस तरह से कुछ दिनों तक बात रही, लोगों ने कहा-खंगार अभी भी आता है। रौर को जब मालूम चला तो उसने तीर चलाकर मार दिया, इधर खंगार के अभाव में सोरठ भी मृत्यु को प्राप्त हो गयी। सोरठ का संस्कार किया, वह पक्षी जब मर गया तो वह भी अपने मानव स्वरूप में आ गया। जब दोनों की चितायें जलायी तो दोनों चिताओं की लपट इतनी ऊँची उठ रहीं थी कि ऊपर जाकर दोनों आपस में मिल रहीं थी। लोगों ने कहा देखो-दोनों की जोड़ी ही थी चिताओं की लपट भी एक दूसरे को छूती जा रही है। जब नील कुमार सोरठ से विवाह करने आया था तब बेटी को नहीं पता था कि वह उसका पिता है फिर भी न जाने क्यों उसके मुँह से एक दोहा निकला-

बेटी हूँ राजा नील की, पाली पील कुमार।
ब्याही जाऊँगी राजा रौर संग, तड़पे राज खंगार॥

वह नील की बेटी थी, राजा पील ने पालन पोषण किया था, विवाह राजा रौर के साथ हुआ था किन्तु खंगार उसके लिये तड़पता रहा।

शिक्षा:

जिसके भाग्य में जैसा है उसे वैसा ही मिलता है। व्यक्ति बिना सद्कार्य किये, अपने कर्त्तव्य का पालन किये बिना यदि जिद्द से किसी कार्य को करता है तो वह उसके फल को प्राप्त नहीं करता। जो हमारे भाग्य में नहीं है उसे छीनकर भी हम भोग नहीं सकते। जो हमारे भाग्य की चीज है वह स्वत: ही चलकर हमारे पास आ जायेगी।

हम सद्कार्य करें किसी दूसरे के भाग्य को छीनने का दु:साहस न करें सदैव अच्छा पुरुषार्थ करें ।